विवेकशिखा

श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-धारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष–१० सितम्बर–१९९१ अंक–९

कर्म, ज्ञान भक्ति और योग—इनमें से एक या अनेक या सबके द्वारा परमात्मा उपलब्ध होते हैं।

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा—८४१३०१

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे—दादर, बम्बई
७१. कुमारी इन्दु जोशी उत्तरकाशी (उ० प्र०)
७२. श्री के० अनूप रोइंग (अरुणाचल प्रदेश)
७३. गंगा सिंह महाविद्यालय छपरा (बिहार)
७४. डॉ० उषा वर्मा छपरा (बिहार)
७५. श्री विजय कु०प्रभाकर राव संखपाल—(महाराष्ट्र)
७६. श्री विजय कुमार सिंह, शुमरीतिलैया (बिहार)
७७. श्री रघुनन्दन सेठी, कोटा, (राजस्थान)
७८. श्री भुवनाथ प्रधान, जमशेदपुर (बिहार)
७९. डॉ० अमरेन्द्र कुमार सिंह, छपरा (बिहार)
८०. श्री रविशंकर पारीक ललित, जयपुर (राजस्थान)
८१. श्री सनत कुमार दुबे सिवनी मालवा (म०प्र०)
८२. डॉ. आशीष कु. बनर्जी-रामकृष्ण मिशन, वाराणसी
८३. श्री चन्द्र मोहन—टुंडला (उ. प्र.)
८४. श्री बी. एल गुप्ता—मानवार (म. प्र.)
८५. डॉ. डी. जे हेमनानी—नागपुर (महाराष्ट्र)
८६ डॉ. एस. एम. सिंह—इलाहाबाद
८७. श्री श्याम सुन्दर चमरिया—बम्बई
८८. श्री जयप्रकाश गुप्ता – परौना, सारण (बिहार)
८९. श्री अमरेश कल्ला जयपुर, (राजस्थान)
९०. श्री प्रफुल्ल तुंगारे—पुणे (महाराष्ट्र)
९१. श्रीमती कमला घोष ---इलाहाबाद
९२. श्री एस. डी. शर्मा - अहमदाबाद
९३. श्रीमती प्रभा भार्गव—बीकानेर (राजस्थान)
९४. श्री शशिकांत मिश्र—नारायणपुर (मध्य प्रदेश)
९५. श्री क० सी० सराफ—बम्बई
९६. श्री ए० के० चटर्जी, आई. ए. एस.—पटना
९७. अखिल, सिम्पोजियम लॉज—छपरा (बिहार)
९८. श्री सुभाष वासुदेव—लुमडिंग (आसाम)
९९. श्री दिलीप देसाई, बरोदा (गुजरात)
१००. श्रीरामकृष्ण आश्रम—इन्दौर (म० प्र०)
१०१. सारदापीठ विद्यालय - इन्दौर (म० प्र०)
१०२. डॉ० ओमप्रकाश वर्मा—रायपुर (म० प्र०)
१०३. विवेकानन्द विद्यापीठ—भोपाल (म० प्र०)
१०४. रामकृष्ण मठ—आमतारा (बिहार)
१०५. श्री सुनील खण्डेलवाल—रायपुर (मध्य प्रदेश)
१०६ श्री बसन्त लाल गुप्ता—नागपुर (महाराष्ट्र)
१०७. श्री जयेश ब्रह्मभट्ट—पुणे (महाराष्ट्र)
१०८. श्री नरेन्द्र कुमार टाक—अजमेर (राजस्थान)
१०९. श्री महन्त युक्तिरामजी—जोधपुर (राजस्थान)
११०. श्री राय मनेन्द्र प्रसाद जमशेदपुर (बिहार)
१११ कुमारी उषा हेगड़े – पुणे (महाराष्ट्र)
११२ श्री विजय प्रकाश—पुणे (महाराष्ट्र)
११३. डॉ० वी० सी० सिन्हा—रीवां (मध्य प्रदेश)
११४. डॉ० एच० पी० सिंह—रीवां (मध्य प्रदेश)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. श्रीरामकृष्ण के प्रिय भजन	स्वामी आत्मानन्द	२
३. क्रान्तिकारी श्रीकृष्ण		३
४. निजी आश्रम : उद्‌म, विकास और कर्त्तव्य	स्वामी गहनानन्द	६
५. शान्ति के सन्धान में (कविता)	मेरी दास	१०
६. रामचरित मानस में शिष्य के लक्षण	स्वामी शशांकानन्द	११
७. धर्मनिष्ठ व्याध	स्वामी विवेकानन्द	२०
८ स्वामी अद्‌भुतानन्द की जीवन कथा	चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय	२३
९. भजन	श्रीमती शीला भुवालका	२७
१०. विवेक चूड़ामणि	स्वामी वेदान्तानन्द	२८

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए विना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष – १० १९९१—सितम्बर अंक – ९

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा–८४१३०१

(बिहार)

फोन : ०६१५२-२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

समुद्र का जल दूर से नीला दिखाई देता है, परन्तु पास जाकर हाथ में लेकर देखने से स्वच्छ, रंगहीन दिखाई देता है। श्रीकृष्ण भी दूर हैं, इसीलिए नीले मालूम होते हैं, पर वास्तव में वे नीले नहीं। वे वर्णरहित, उपाधिरहित, नित्य हैं।

(२)

तुम लोग जगत् का उपकार करने की बात कहते हो। पर जगत् क्या इतनी छोटी चीज है? और फिर जगत् का उपकार करने वाले भला तुम कौन हो? पहले साधन-भजन के द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार कर लो, उनका लाभ कर लो। वे शक्ति दें तभी तुम लोगों का हित कर सकते हो, अन्यथा नहीं।

(३)

एक आदमी आधी रात को उठा और तमाखू पीने की इच्छा से टिकिया सुलगाने के लिए पड़ोसी के घर जाकर दरवाजा खटखटाने लगा। घर में सभी लोग सो गये थे। काफी देर बाद एक व्यक्ति ने दरवाजा खोला और पूछा, "क्यों जी, क्या बात है?" इस आदमी ने कहा, "तमाखू पीना है; टिकिया सुलगाने के लिए थोड़ी अंगार चाहिए थी।" तब पड़ोसी ने कहा, "तुम भी बड़े अजीब हो! अंगार के लिए आधीरात को इतनी तकलीफ उठाकर तुम यहाँ आये, इतना दरवाजा खटखटाया, पर तुम्हारे तो हाथ ही में लालटेन जल रही है।" मनुष्य जो पाना चाहता है वह उसके पास ही, है फिर भी वह उसके लिए नाना जगह भटकता रहता है।

श्रीरामकृष्ण के प्रिय भजन

अनुगायक स्वामी निखिलात्मानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ
इलाहाबाद

(मनोहरशाही—झपताल)

एमनि महामायार माया रेखेछे कुहक करे ।
ब्रह्मा विष्णु अचैतन्य, जीवे कि जानिते पारे ।।
बिल करे घुनी पाते, मीन प्रवेश करे ताते ;
गतायातेर पथ आछे तोबु मीन पलाते नारे ।।
(जावा आसार दुवार खोला, तोबु मीन पलाते नारे ।।)
गुटीपोकाय गुटी करे, काटले से तो काटते पारे,
महामायार बद्ध गुटी आपनार जाले आपनि मरे ।।

भावानुवाद (मनोहरसाही– झपताल)

ऐसी महामाया की माया रखा सबको ढाँक के रे ।
ब्रह्मा विष्णु हुए बेसुध जीव की क्या बिसात है रे ।।
मछुआ जहाँ जाल बिछाये मछली आकर फँस जाये ।
चाहे तो मछली भाग जाये फिर भी वह न भागती रे ।।
(आने जाने का द्वार खुला, तब भी वह न भागती रे ।।)
रेशम कीट कोश रचे चाहे तो तोड़ निकल बचे ।
बद्ध कीट पड़ माया में अपने जाल में खुद ही मरे ।।

क्रान्तिकारी श्रीकृष्ण

—स्वामी आत्मानन्द

[ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव थे। वे न केवल स्वामी विवेकानन्द के भावादर्शों के साकार सार्थवाह एवं करुणापूर्ण कर्मयोगी थे, बल्कि निष्णात पंडित एवम् आधुनिक दृष्टि सम्पन्न प्रखर वाग्मी भी थे। श्रीमद्भगवद्गीता पर उनके विख्यात व्याख्यानों का संकलन 'गीता तत्व चिन्तन' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ है। उसी के प्रथम भाग पृ० ४२-४६ से यह लेख प्रस्तुत है।—सं]

कृष्ण युगाचार्य हैं। वे महान् क्रान्तिकारी हैं। उनकी कथनी और करनी में कहीं कोई पार्थक्य नहीं है। जैसा उपदेश करते हैं, वैसा ही आचरण भी। उन्होंने अर्जुन को द्वन्द्वों में बुद्धि को समतोल करने के लिए कहा। वे स्वयं इसके उदाहरण हैं। कृष्ण का जीवन उनके उपदेशों पर भाष्य है। जहाँ कहीं मैं गीता के किसी श्लोक को समझने में असमर्थ होता हूँ, तो कृष्ण के चरित्र की ओर देखता हूँ कि उन्होंने वैसी परिस्थितियों में क्या किया। बस उस श्लोक का मर्म मेरी आँखों के सामने स्पष्ट हो जाता है। तो, मैं कह रहा था कि कृष्ण का जीवन उनके उपदेशों की प्रांजल टीका है। जरा देखें कृष्ण को। अर्जुन कहता है मैं युद्ध नहीं करूँगा। सुनकर कृष्ण विचलित नहीं होते। उनके अधरों पर वही स्मिति है, जो गोपियों को देखकर होती थी। वे उसी कोमलता और साथ ही दृढ़ता के साथ अर्जुन को समझाते हैं, जिस कोमलता के साथ वंशी में धुन फूँकते थे और जिस दृढ़ता के साथ बाँसुरी के पोरों पर अपनी उँगलियों को नचाते थे। वे कोमल हैं, और कठोर भी। तभी तो कवि गाता है—

प्रपन्नपारिजाताय तोत्रवेत्रैकपाणये।
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः॥

- हे भक्त कल्पद्रुम! हे दण्डपाणि! हे ज्ञानमुद्राधारी कृष्ण! हे गीतामृत-दोहन कर्ता! तुम्हें प्रणाम है।'

वासदेवसुतं देवं कंस चाणूर मर्दनम्।
देवकी परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥

- कंस और चाणूर का मर्दन करने वाले, देवकी को परम आनन्द देने वाले, वासुदेव नन्दन, देव-देव, जगद्गुरु श्रीकृष्ण की मैं वन्दना करता हूँ'।

कृष्ण कल्पद्रुम-कोमल हैं, तो दण्ड-कठोर भी; भक्तजन-सुलभ हैं, तो कठोर ज्ञानमुद्राधारी भी! वे वासुदेव-देवकी के लिए कोमल आनन्द-दाता हैं तो कंस और चाणूर के लिए कठोर मर्दनकारी भी! तभी तो पाण्डवों को जैसा निश्छल प्यार दिया, वैसा कौरवों के लिए वे अभिशाप भी बने। कौरवों के घोर भँवर से पाण्डवों की विजय-नौका को बचाकर पार ले गये। वे तो भक्तजनों को पार ही उतारा करते हैं। जो भी उनकी शरण में जाता है, उसका हाथ थाम लेते हैं और उसकी तरी को निर्विघ्न उस पार पहुँचा देते हैं। कवि कहता है—

भीष्मद्रोणतटा जयद्रथजला गान्धारनीलोत्पला।
शल्यग्राहवती कृपेण वहनी कर्णेन वेलाकला।
अश्वत्थामविकर्णघोरमकरा दुर्योधनावर्तिनी।
सोत्तीर्णा खलु पाण्डवै रणनदी कैवर्तकः केशवः॥

—'जिस समर नदी के भीष्म और द्रोण दो तट हैं, जिसका जल जयद्रथ है, जिसमें गान्धार-राज नील कमल हैं, शल्य ग्राह है, कृपाचार्य धारा है कर्ण उर्मियां है, अश्वत्थामा और विकर्ण भयंकर मकर हैं, दुर्योधन भवंर है, उसे पाण्डवों ने केशव-केवट की सहायता से पार कर लिया'।

गीता : महाभारत का ही अंश

यह गीता-गायक कृष्ण का महिमामय रूप है, जो महाभारत के माध्यम से हमारे सामने प्रकट होता है। गीता महाभारत के ही अंश रूप में हमें प्राप्त होती है। कुछ लोग कहते हैं कि यह महाभारत का अंश नहीं, बाद में इसकी रचना कर इसे महाभारत में डाल दिया होगा। उनके मतानुसार गीता महाभारत में क्षेपक है, प्रक्षिप्त है। परन्तु ऐसे भी धुरन्धर विद्वान हैं, जो उपर्युक्त राय को नहीं मानते और कहते हैं कि दोनों ग्रन्थों की भाषाएँ समान हैं। यदि दोनों अलग अलग काल की रचनाएँ होतीं, तो दोनों की भाषाओं में अन्तर अवश्य रहता। भाषाओं का एक प्रवाह होता है। भाषाओं की अपनी एक शैली होती है। पचास वर्षों में भाषा शैली में और प्रवाह की दृष्टि से कुछ तो परिवर्तन अवश्य हो जाता है। हम अंग्रेजी भाषा को ले लें, या हिन्दी को ही लें पिछले पचास वर्षों में कितना अन्तर शैली में मालूम पड़ता है। परन्तु महाभारत और गीता का अध्ययन करने पर ऐसा पता नहीं चलता कि कहीं भाषा का प्रवाह बदला हो। जो हो, हमें इस पण्डिताऊ ऊहापोह में नहीं पड़ना है। हमारे लिये इतना जान लेना पर्याप्त है कि गीता महाभारत में क्षेपक नहीं है, बल्कि उसका अपना एक अंश है। यदि महाभारत दुग्ध है, तो गीता उससे प्राप्त नवीनत। कवि गाता है—

पाराशर्यवचः सरोजममलं गीतार्थगन्धोत्कटम्
नानाख्यानककेसरं हरिकथासम्बोधनाबोधितम्।
लोके सज्जनषट्पदैरहरहः पेपीयमानं मुदा
भूयाद् भारतपंकजं कलिमलप्रध्वंसिनः श्रेयसे।

व्यास के वचन रूपी सरोवर में महाभारत रूप निर्मल कमल उपजा है, जिसमें गीतार्थ की तीव्र सुरभि है, नाना अख्यानों का केसर है जो हरि-प्रसंग से पूरी तरह खिला हुआ है तथा जिसका सुजन—अलि इस लोक में मुदित होकर पान करते हैं, ऐसा यह महाभारत पंकज श्रेय चाहने वालों के कलिमल का नाश करें।

यहाँ पर कवि महाभारत की उपमा कमल से देता है और गीता को उसकी सुरभि बतलाता है। एक और बात। महाभारत में हम अनेकों कहानियां और आख्यान पाते हैं। पर गीता में सिद्धान्तों की चर्चा है। फिर, हम यह भी देखते हैं कि गीता में जिन सिद्धान्तों का विवेचन हुआ है, उन्हीं का सरल ढंगों से समझाने के लिए महाभारत की आख्यायिकाओं का विस्तार हुआ है। इसलिए मैं महाभारत को गीता की टीका मानता हूँ। हमने पहले कहा कि गीता वेदों की उत्तम टीका है, जिसकी रचना वेदों को निःश्वसित करने वाले साक्षात् भगवान् करते हैं। और गीता की टीका है, महाभारत। गीता का कोई भी श्लोक ले लें, उसकी स्पष्ट और सुविस्तृत व्याख्या में आपको महाभारत का कोई न कोई आख्यान अवश्य मिल जाएगा। उदाहरण के लिए वह श्लोक ले लें, जहाँ श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं (९/३२ —

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

'हे अर्जुन' स्त्री वैश्य या शूद्र जो भी पाप-योनि के अन्तर्गत माने जाते हैं, वे भी मेरा आश्रय ग्रहण कर परमगति को प्राप्त होते हैं।

कृष्ण का क्रान्तिकारी रूप

इसे मैं श्रीकृष्ण का दूसरा क्रान्तिकारी विचार कहता हूँ। पहला तो हमने यह देखा था कि प्रत्येक कर्म ही यज्ञ बन सकता है भगवान् की पूजा बन सकता है। अब यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण उस परमगति

का दरवाजा खोल देते हैं। भले ही परम्परा कतिपय वर्ग के लोगों को पापयोनि माने, पर कृष्ण इसे स्वीकार करने के लिये प्रस्तुत नहीं। वे इस परम्परा का विरोध करते हैं और कहते हैं कि जो भी सच्चे मन से भगवान् की शरण जाता है, वही परमपद का अधिकारी है। इसके दृष्टान्त स्वरूप हम महाभारत में 'व्याध गीता' के प्रसंग में एक आख्यान पाते हैं, जहाँ ब्राह्मण कुमार तपस्वी कौशिक गार्हस्थ्य धर्म का पालन करने वाली महिला से ज्ञान प्राप्त करता है तथा बाद में मिथिला जाकर धर्मव्याध नामक कसाई से वेदान्त सम्बन्धी शंकाओं का समाधान कराता है। इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर जाजलि नामक ऋषि तुलाधार वैश्य से जीवन और अध्यात्म के रहस्य की शिक्षा प्राप्त करते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि महाभारत गीता की एक विशद टीका है। और कभी हमने कहा कि उसका दृष्टिकोण अत्यन्त क्रान्तिकारी है। महाभारत काल के भारत की कल्पना कीजिए, जब प्रतीत होता है कि धर्म के क्षेत्र में पर्याप्त अन्ध विश्वास विद्यमान था, जब धर्म के नाम पर लोगों का शोषण होता था। इसका अन्दाज इसी से लग जाता है कि स्त्री, वैश्य और शूद्र को पाप-योनि कहा जाता था। कृष्ण इस धार्मिक और समाजिक शोषण के विरोध में उठ खड़े होते हैं और घोषणा करते हैं कि परमपद को पाने का अधिकार मनुष्य को जन्म से नहीं मिला करता। एक विशेष वर्ग में पैदा हो जाने मात्र से मनुष्य को ज्ञान का अधिकार नहीं मिल जाता। यह अधिकार तो मनुष्य अपने कर्मों और अपनी बुद्धि से प्राप्त करता है। इसी दृष्टान्त स्वरूप हम महाभारत में उस महिला, उस तुलाधार वैश्य और उस धर्म व्याध शूद्र को ज्ञान का अधिकारी देखते हैं और यह भी देखते हैं कि वे अपने कर्मों को यज्ञ बनाकर इतने ऊपर उठ गये कि उन्होंने ब्राह्मण तपस्वी कौशिक और जाजलि मुनि को ज्ञान के उपदेश देने का अधिकार प्राप्त कर लिया।

तभी तो कृष्ण अर्जुन को अपने ही कर्म में लगे रहने का उपदेश करते हैं। अर्जुन ने युद्ध को घोर कर्म माना। वह भिक्षा द्वारा जीवन-यापन को श्रेयस्कर मानने लगा था। भगवान् उसकी भ्रान्ति को दूर करते हुए कहते हैं (१८-४५-४६)—

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु॥
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

— 'अपने अपने कर्मों में लगे रहकर मनुष्य सिद्धि की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। अपने कर्म में निरत रहकर वह सिद्धि किस प्रकार पाता है, वह उपाय सुन। जिस परमात्मा से समस्त चराचर जगत् की उत्पत्ति हुई है, और जिससे यह सारा विश्व व्याप्त है, उसकी अपने कर्मों के द्वारा पूजा करते हुए मनुष्य सिद्धि को पा लेता है।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि गीता भगवती उस संसिद्धि की प्राप्ति के लिए सभी का आह्वान करती है। उसकी दृष्टि में जीवन के परम प्रयोजन को प्राप्त करने के लिए पुरुष या स्त्री का भेद नहीं है, और न ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र का ही भेद है। उसके लिए कोई गोरा और काला नहीं है, उसकी दृष्टि में देश और धर्म का कोई विभेद नहीं है। जो सुधी है विवेकी है, इस संसार में रहते हुए भी संसार को अपना न मान, उस परमेश्वर को ही अपना मानता है, वही गीता ज्ञान का अधिकारी है।

भगवान् श्रीरामकृष्ण देव भक्तों को उपदेश देते हुए कहा करते थे – संसार में रहो पर संसार तुममें न रहे। नाव जल में रहे यह ठीक है, पर जल नाव में रहे, यह ठीक नहीं है। जिसकी बुद्धि में ऐसी धारणा हो गयी है, वह सुधी है। और वही गीता रूपी दुग्धामृत के पान का अधिकारी है।

....

निजी (प्राइवेट) आश्रम : उद्भव, विकास और कर्तव्य

—श्रीमत् स्वामी गहनानन्दजी महाराज
महासचिव,
रामकृष्ण मठ एवं मिशन (बेलुड़ मठ)

[रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषदों का प्रथम महाधिवेशन १९-२० नवम्बर १९८९ को बेलुड़ मठ में आयोजित हुआ था। इस अवसर पर रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के महासचिव श्रीमत् स्वामी गहनानन्द जी महाराज ने जो स्वागत-भाषण दिया था, उसका अँग्रेजी से हिन्दी में भावानुवाद रामकृष्ण-विवेकानन्द सेवाश्रम, मुजफ्फरपुर में ८ अप्रैल १९९१ को आयोजित बिहार भाव-प्रचार परिषद् के अधिवेशन में डॉ० केदारनाथ लाभ ने प्रस्तुत किया था। यहाँ वही अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है।—सं०]

प्रिय स्वामीगण एवं मित्रो,

श्री रामकृष्ण, परमपावनी माँ सारदा देवी, स्वामीजी और उनके गुरुभाइयों के शुभाशीर्वादों की कामना करता हुआ निजी (प्राइवेट) आश्रमों के संगठन—रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव प्रचार परिषद् के प्रथम अधिवेशन में इस बेलुड़ मठ में मैं आप सब का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। बेलुड़ मठ पवित्रतम स्थानों में पवित्र स्थान है जहाँ स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रतिष्ठित श्रीरामकृष्ण सदैव विराजमान हैं। अध्यात्मिकता से स्पन्दित बेलुड़ मठ शान्ति और शक्ति का अखण्ड उद्गम स्रोत है और कोई भी यथार्थ आकांक्षा रखनेवाला यहाँ आध्यात्मिकता की साँस ले सकता है। इस पवित्र भूमि पर रामकृष्ण भावान्दोलन के एक महत्वपूर्ण अंश की समीक्षा करने हमलोग यहाँ एकत्र हुए हैं। मैं निजी (प्राइवेट) आश्रमों का उल्लेख करता हूँ जो श्री रामकृष्ण, परम पावनी माँ सारदा देवी और स्वामीजी के नाम पर सम्पूर्ण विश्व में उभर आये हैं। निजी आश्रमों के साथ-साथ परिषदों को सुदृढ़ करने तथा इस भावान्दोलन को और अधिक स्पन्दनशील, सशक्त और प्रभावकारी बनाने के लिए इस मंच पर हमलोग अपने आदर्शों का पुनरावर्तन, विचारों का आदान प्रदान, समान मुद्दों पर बहस, संदेहों का निराकरण और भावी कार्यक्रमों का निर्धारण करेंगे।

'निजी आश्रम' (Private Ashrama) कोई सुखद नाम नहीं है। इससे एक गलत ध्वनि निकल सकती है कि आश्रम किसी एक या कुछ थोड़े से लोगों के व्यक्तिगत कार्यकलापों से जुड़ा है और सामान्य जनता के लिए नहीं खुला है। इसका अर्थ एक व्यक्ति या कुछ लोगों के समूह की संस्था भी हो सकता है। किन्तु 'निजी आश्रम' का यह सब अर्थ नहीं है। 'निजी आश्रम' से हमलोगों का तात्पर्य है श्रीरामकृष्ण, श्री सारदा देवी या स्वामी विवेकादन्द के नाम पर स्थापित वे केन्द्र जो रामकृष्ण मिशन या रामकृष्ण मठ, बेलुड़ की शाखाएँ नहीं हैं। पवित्र त्रिमूर्तियों के आदर्शों का अनुगमन करनेवाले ये असम्बद्ध (Non-affiliated)—आश्रम श्रीरामकृष्ण के भक्तों और प्रशंसकों द्वारा संचालित होते हैं। इनमें से कुछ की व्यवस्था उन साधुओं द्वारा होती

है जो पावन त्रिमूर्तियों के उपदेशों का अनुसरण तो करते हैं किन्तु रामकृष्ण संघ के साधु नहीं हैं।

काम की बात करने के पहले मैं आपके समक्ष निजी आश्रम के विकास का इतिहास प्रस्तुत करना चाहता हूँ। १ मई, १८९७ ई० को बलराम बोस के गृह में हुई गरिमामय सभा में संन्यासियों और श्रीरामकृष्ण के गृही भक्तों को सम्बोधित करते हुए स्वामीजी ने कहा था, "यह संघ उनके नाम पर स्थापित होगा जिनके नाम पर हमलोग संन्यासी हुए हैं, उनके नाम पर जिन्हें अपना आदर्श बनाकर आपलोग गृहस्थ का जीवन-यापन कर रहे हैं हमलोग मात्र अपने प्रभु के दास हैं, आप सब इस कार्य के सहायक बनें।, स्वामीजी का यह आह्वान मानो सभी समान विचारधारा वाले लोगों के हृदय में पुनर्स्पन्दित हुआ। इसने उन्हें इस देश और विदेश के भी विभिन्न भागों में आश्रम स्थापित करने की प्रेरणा प्रदान की। यहाँ ध्यान देने योग्य यह बात है कि उस ऐतिहासिक सभा में गृही भक्तों की संख्या संन्यासियों से दुगुनी अधिक थी।

रामकृष्ण भावान्दोलन का इतिहास त्यागी एवं कर्मठ गृही भक्तों के उल्लेखनीय उदाहरणों से भरा पड़ा है। मठ और मिशन की स्थापना के प्रारम्भिक दिनों से ही कुछ गृही भक्तों के अनवरत संरक्षण और आर्थिक सहयोग ने प्रचंड कठिनाइयों के बावजूद संन्यासी बन्धुओं को आगे बढ़ने में सहायता प्रदान की।

लेकिन इससे भी अधिक उनका और कुछ महिला भक्तों का उदाहरण योग्य जीवन था जिसने इस भावधारा के आदर्श का जीवंत प्रदर्शन किया तथा जिसने आशा और आनन्द के संदेश के प्रचार में सहायता की।

यह एक गलत धारणा है कि श्रीरामकृष्ण का भाव मात्र रामकृष्ण संघ के साधुओं के लिए है। यह स्वामीजी के ऐतिहासिक भाषण से स्पष्ट है कि रामकृष्ण भाव आन्दोलन साधुओं एवं गृही भक्तों का सम्मिलित प्रयास है। रामकृष्ण मठ और मिशन के द्वितीय महाधिवेशन में जो १९८० ई० मे हुआ था, मठ के दसवें महाध्यक्ष स्वामी वीरेश्वरानन्द ने इसी प्रकार का आह्वान किया था। उन्होंने कहा था, "मैं श्रीरामकृष्ण के अनुगामियों से देश के पुनर्निर्माण के लिए उत्साहपूर्वक व्यक्तिगत रूप से और इसी प्रकार के सगठनों की देश के विभिन्न भागों में स्थापना करने की अपील करता हूँ क्योंकि यद्यपि मिशन के साधुओं के द्वारा किये जाने वाले कार्य अपनेआप में काफी हैं तथापि देश की आवश्यकताओं की तुलनामें वस्तुतः बहुत कम हैं। उनका यह विश्लेषण कि पावन त्रिमूर्तियों के उपदेशों का निष्ठापूर्वक पालनकरनेवाला प्रत्येक व्यक्ति इस संघ का सदस्य है, इसने इस भावान्दोलन के क्षेत्र का विस्तार किया है और समान विचार के लोगों को इस भान्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने की प्रेरणा प्रदान की है। उस महाधिवेशन के फलस्वरूप एक भाव प्रचार समिति का गठन हुआ जिसने दो स्तरों पर १० सूत्री कार्यक्रमों की निर्देशक रेखा निजी आश्रमों के लिए विकसित की। फलत परिषद् को स्थापना हुई। अभी ९ ऐसी परिषदें हैं जिनके अधीन २४९ स्वतंत्र आश्रम हैं। अन्य दो परिषदें निर्माणाधीन हैं। अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के रूप में रामकृष्ण संघ के संन्यासी परिषद् और मठ-मिशन के बीच सम्पर्क बनाये रखने का कार्य करते हैं। इसी बीच रामकृष्ण मठ, बेलुड़ के संन्यासी (Trustee) ने भाव प्रचार समिति का पुनर्गठन किया है। इसने परिषदों के लिए कुछ निर्देशक रूपरेखा तैयार की है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि सम्पूर्ण देश को स्वतंत्र आश्रमों और परिषदों से अच्छादित कर देना होगा। स्वामीजी भारत के प्रत्येक गाँव में एक आश्रम को स्थापित देखना चाहते थे। इस महान् दायित्व को ध्यान में रखते हुए हमलोग इस बात का सहज अनुमान कर सकते हैं कि इन परिषदों से

कैसी महत्तम और महत्वपूर्ण कार्य करने की आशा की जाती है।

प्राय: देखा जाता है कि स्वतंत्र आश्रम मन्दिरों के निर्माण, प्रतिमा पूजन और वार्षिक उत्सवों के आयोजन में अधिकांशत: लगे रहते हैं। यह अच्छा है किन्तु पर्याप्त नहीं है। श्रीरामकृष्ण, श्रीमां या स्वामीजी की ईश्वर के रूप में मात्र आराधना करने से हम उन्हें अपने से दूर रखते हैं। ये जीवित देवता हम से कुछ और अधिक की मांग करते हैं। श्रीकृष्ण ने भक्तों को आमंत्रित करते हुए कहा – "मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु"— अपने मन को मुझसे भर लो, मेरे भक्त बनो, मेरे लिए बलि दो और मुझे नमस्कार करो। हमें इस ईश्वरीय आह्वान के महत्व को समझना चाहिए जिसको श्रीरामकृष्ण ने एक बार पुन: दुहराया है। जो स्वयं को भक्त समझते हैं उन्हें यह समझने की अवश्य चेष्टा करनी चाहिए कि श्रीरामकृष्ण की हमसे क्या अपेक्षाएँ हैं। प्रत्येक भक्त को धार्मिक जीवन जीना चाहिए जिसके स्वामीजी के अनुसार दो रूप हैं। प्रथमत: भक्त को आध्यात्मिक अनुशासन जैसे— जप, ध्यान, उपवास, तीर्थाटन, साधुसंग, शास्त्र-अध्ययन, भजन आदि का पालन करना चाहिए। उसे शास्त्र सम्मत पंचयज्ञ करने का अभ्यास भी करना चाहिए। पंचयज्ञ का उद्देश्य सभी जीवों का हित करना है। समय की आवश्यकता को ध्यान में रखकर स्वामीजी ने पंच यज्ञ की धारणा को एक नयी दिशा दी। उन्होंने दरिद्रों एवं जरूरतमद लोगों की सेवा ईश्वर के रूप में करने की दृढ़ता-पूर्वक अनुशंसा की। उन्होंने इसके लिए नया मंत्र दिया – दरिद्र देवो भव, मूर्ख देवो भव। जब तक भक्तगण स्वामीजी के आह्वान पर कार्य नहीं करते और रामकृष्ण भावान्दोलन में शरीक नहीं होते तब तक उन्हें अपने को सच्चा भक्त कहने का कोई अधिकार नहीं है।

सम्बद्ध (affiliated) या असम्बद्ध (Non-affiliated) किसी आश्रम विशेष के ईर्द-गिर्द रहने वाले गृही भक्तों को चाहिए कि वे आश्रम को अपने जीवन के केन्द्र में रखें और सक्रियतापूर्वक आश्रम के कार्यकलापों में भाग लें और इस प्रकार अपने को आध्यात्मिक रूप से समृद्ध करें तथा आश्रम के विकास और संवर्धन में योगदान करें।

श्रीरामकृष्ण के आदर्श-भक्त के कर्तव्य की रूपरेखा स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज ने तैयार की है। उन्होंने एक पत्र में लिखा – प्रभु के भक्त ही हमारे मित्र, सम्बन्धी, सन्तान और सब कुछ हैं। सुख या दु:ख में तुम हमारे अपने हो। यह कम आश्चर्य का विषय नहीं है कि तुम यद्यपि सांसारिक जीवन जी रहे हो तथापि श्रीरामकृष्ण की शुद्धा-भक्ति प्राप्त करने की कामना करते हो। सामान्य लोगों को देखो। उनमें से अधिकांश विक्षिप्त हैं, धन, यश या विद्या के गर्व से मदान्ध हैं। संसार की इस भयंकर मरुभूमि में, भगवान रामकृष्ण ही शान्ति और धन्यता के एकमात्र स्रोत हैं।

'तुम्हें किसी बात से भयभीत नहीं होना है। क्योंकि तुमने श्रीरामकृष्ण रूपी खंभे को पकड़ रखा है। तुम्हारा लक्ष्य सुनिश्चित है। तम्हारा उदाहरण देखकर, बहुत लोग सही मार्ग पर अपने पाँव धरने की चेष्टा करेंगे।

"आह, श्रीरामकृष्ण के भक्तो, उद्धरणीय जीवन का प्रदर्शन करो; दूसरों को तुमसे यह सीख लेने दो कि कैसे पवित्र, नि:स्वार्थ ईश्वर के प्रेम के अति-रिक्त किसी वस्तु की कामना किये बिना जीवन जिया जा सकता है। इस संसार में एक नये युग का परावर्तन करो जिसमें लोग श्रीरामकृष्ण से प्रेम करना सीखेंगे और उनमें ही शान्ति एवं शक्ति पा सकेंगे। तुम्हारे कर्म और आचरण बोलें केवल शब्द या सिद्धान्त नहीं, श्रीरामकृष्ण तुम्हारी सहायता करें और तुम्हें शक्ति दें। उनमें विश्वास करो। वे हमलोगों के हैं और हम उनके हैं।" इससे भक्त के दुहरे कार्य ध्वनित होते हैं। उसे स्वयं एक आदर्श जीवन जीना है और दूसरों की

वैसा ही अभ्यास करने में मदद करनी है और इस प्रकार नव युग का निर्माण करना है जिसकी अवधारणा हमारे महान नायक स्वामी विवेकानन्द ने की।

भक्तगण यह दुहरा कार्य तभी कर सकते हैं जब वे आदर्श के प्रति निष्ठावान, समर्पित एवं श्रद्धावान हों। पावन त्रिमूर्तियों के अनुगामियों का एक लक्षण यह है कि वे जो उपदेश देते हैं, उसको स्वयं व्यवहार में लाने का प्रयास करते हैं। वे काम अधिक करते हैं, बातें कम। स्वामीजी ने कहा था - "मैं देखता हूँ कि केवल उनकी मंडली को छोड़कर सर्वत्र विचार और आचार में फर्क है।" इसलिए श्रीरामकृष्ण के प्रत्येक अनुगामी को श्रीरामकृष्ण और उनके शिष्यों के द्वारा अनुशंसित जीवन—यापन करने का दृढ़तापूर्वक प्रण करना चाहिए और स्वामीजी के इस आह्वान को सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि 'नाम, यश, शुभकर्म यज्जुहोषि, यत्तपस्यसि यदश्नासि आदि तुम जो भी यज्ञ करो, जो भी तपस्या करो, जो भी आहार ग्रहण करो- सब कुछ श्रीरामकृष्ण के चरणों में अर्पित करो।' महत उद्देश्य के प्रति अपने सम्पूर्ण हृदय से स्वयं का समर्पित करने से कोई भी व्यक्ति पूर्वकथित दुहरे काय कर सकता है।

यह रामकृष्ण भावान्दोलन अ-राजनैतिक और असाम्प्रदायिक है। इसका दृष्टिकोण सार्वजनीन है। यह मानव जाति में पूर्ण आध्यात्मिक पुनरुत्थान लाना चाहता है। यह जाति, वर्ण, लिंग आदि के भेद के बिना सबका स्वागत करता है। इसकी पताका पर लिखा है--"सहायता करो, संग्रह नहीं, समन्वय करो, सहार नहीं, मेल और शान्ति रखो, विरोध नहीं।" यह भावान्दोलन जब लोकोपकारी कार्य भी करता है तब भी इसका जोर सेवा करने वालों और सेवा पानेवालों के आध्यात्मिक उत्कर्ष पर रहता है।

स्वतंत्र आश्रम और परिषदों को श्रीरामकृष्ण के भक्तों और प्रशंसकों में सहयोगिता और सुदृढ़ता का भाव उत्पन्न कर रामकृष्ण भावान्दोलन को मजबूत करना चाहिए।

स्वामीजी ने पश्चिम की, वैज्ञानिक संस्कृति और संगठन शक्ति के साथ पूर्व के त्याग और सेवा के आदर्श के समन्वय के द्वारा मानवजाति के पुनरुत्थान का परिदर्शन किया था। इस दृष्टि के विकास से मनुष्य के सारे प्रयास - कला, साहित्य, विज्ञान, दर्शन, राजनीति अर्थशास्त्र—आदि मनुष्य की आध्यात्मिक पूर्णता की आन्तरिक पिपासा को शान्त करने में सहायक हो सकेंगे।

साधु सन्यासी और गृही भक्त जो इस भावान्दोलन में भाग ले रहे हैं सबको आध्यात्मिक रूप से विकसित होना होगा। ज्यों-ज्यों व्यक्ति आध्यात्मिक ढंग से समृद्ध होता जायगा, वह धीरे-धीरे अपने को "कच्चा मैं" के चंगुल से मुक्त कर लेगा।

यदि हम सही यंत्र बन सकें तो त्रिदेव हमारी शक्ति और प्रेरणा के आन्तरिक स्रोत बन जाएँगे। स्वामीजी ने कहा था - "यह हमारे लिए गौरव और सौभाग्य की बात है कि हमलोगों को श्रीरामकृष्ण के अधीन कार्य करने की अनुमति मिली है।" अतः हमलोगों को स्वयं को धन्य समझना चाहिए कि हमलोग उनके द्वारा चुने गये लोगों में हैं।

मैं आप सब के साथ श्रीरामकृष्ण से, परम पावनी माँ और स्वामीजी से हमलोगों को श्रद्धा विश्वास और शक्ति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ जिससे हमलोग अपना कार्य फलप्रद रूप से कर सकें, भले ही यह कार्य गिलहरी के द्वारा श्रीराम का सेतु बनाने की भाँति ही क्यों न हो।

शान्ति के सन्धान में

—मेरी दास

[मेरी दास ईसाई महिला हैं। उनकी 'शान्तिर सन्धाने' शीर्षक से बंगला पत्रिका 'उद्बोधन' के जून, १९९१ अंक में जो कविता प्रकाशित हुई थी, उसी का यहाँ हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है; अनुवादक हैं—डॉ० केदारनाथ लाभ।]

शान्ति की तलाश में निकली हूँ।
नगरों, गाँवों, विभिन्न बस्तियों में,
गयी हूँ गिरजाघरों, मन्दिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों में -
कहीं जैसे एक सीमा का बन्धन—
एक धर्मान्धता, छुआछूत की भावना --
निराश होकर लौट आयी हूँ
रिक्त हृदय लेकर।

कहाँ है शान्ति
क्या सब कुछ है भ्रान्ति ?
दीनता से भर गया है मन।

यात्रा का अन्त हुआ—
श्रीरामकृष्ण की मूर्ति के समक्ष आकर—
सन्ध्या-आरती के साथ-साथ होता है स्तवन—
"खण्डन भव-बन्धन···· —"
साधु भक्तगण सब बैठे हैं
ध्यान-निमीलित नेत्रों से;
किसी मदिरता में मानो मन्दिर काँप रहा है थर-थर
सुन्दर संध्या, सुन्दर परिवेश;
मन का पंछी गा उठा गीत;
अनजाने हाथ जुड़ गये —
भूमिष्ठ हो किया प्रणाम।
आकण्ठ किया पान
शान्ति की स्रोतधारा का !

मैं ईसाई हूँ
सब के साथ एक कर
मुझे अपनी गोद में उठा लिया
कौन इस मानव ने !
हे रामकृष्ण, तुम्हारे चरणों में आकर
मैंने पाया है परिपूर्ण शान्ति का सन्धान ॥

रामचरितमानस में शिष्य के लक्षण

स्वामी शशांकानन्द
प्राचार्य,
समाज सेवक शिक्षण मंदिर
बेलुड़ मठ

यह तो अब हम जानते ही हैं कि आध्यात्मिक जगत में सद्गुरु की प्राप्ति आवश्यक है। गुरु ही धर्म-पिपासु शिष्य को धर्मानुभूति के मार्ग पर अग्रसर कर सकते हैं। गुरु के साथ शिष्य का सम्बन्ध ठीक वैसा ही है जैसा किसी पूर्वज के साथ उसके वंशज का होता है। जो कोई भी गुरु नहीं हो सकता। उसमें गुरु बनने की योग्यता होनी चाहिए, उसी प्रकार जो कोई भी शिष्य नहीं हो सकता। स्वामी विवेकानन्दजी कहते हैं, "गुरु और शिष्य, दोनों के सम्बन्ध में कुछ कसोटियां और शर्तें आवश्यक हैं।"

मनुष्यत्वं

जीव की चौरासी लाख योनियां हैं जिनमें वह भटकता रहता है। गोस्वामी तुलसीदासजी के विचार में जीव इन योनियों में भटकता हुआ नाना प्रकार के भोग भोगता रहता है। किन्तु केवल मनुष्य योनि ही ऐसी योनि है जिसमें जीव साधना कर मोक्ष-प्राप्ति कर सकता है। यह मनुष्य योनि खरीदी नहीं जा सकती। यह इतनी मूल्यवान है कि जप, तप ब्रह्मचर्य पालन इत्यादि किसी के द्वारा भी इसकी प्राप्ति का हम दावा नहीं कर सकते। यह बड़ी ही दुर्लभ योनि है।

-'बड़े भाग मानुष तन पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन गावा"॥

सभी शास्त्रों ने ऐसा ही कहा है कि यह देवताओं को भी दुर्लभ मनुष्य योनि बड़े भाग्य से ही मिलती है।

'साधन धाम मोच्छ कै द्वारा।" केवल इसी योनि में जीव साधना करके गुरु प्रसन्नता से ज्ञान लाभ करके मोक्ष प्राप्ति करता है। और यह योनि भगवान् स्नेहवश बिना किसी मतलब के करुणा करके ही देते हैं। अतः ईश्वर—कृपा ही शिष्य का पहला लक्षण है जिसके द्वारा वह मनुष्य योनि में जन्मा है।

अज्ञान से भ्रमित—जीव

जीव का जन्म लेना ही उसके अज्ञान का प्रमाण है, उसका माया-बन्धन ही उसकी परिभाषा है। जगद्गुरु शंकराचार्य जी प्रश्नोत्तरी में कहते हैं—"बद्धो हि को यो विषयानुरागी, का विमुक्तिर्विषये विरक्तिः।"

बन्धन में कौन है? विषयानुरागी। मुक्ति क्या है? विषयों में विरक्ति। अर्थात् विषयों में अनुराग ही जीव के बन्धन का कारण है, उसके जन्म मरण का हेतु है। विषयों में अनुराग कब होता है? जब हम विषयों को सत्य मान लेते हैं और ईश्वर को असत्य। यही माया है। गोस्वामी

तुलसीदासजी कहते हैं कि जीव की यह अकथनीय कहानी सुनिए जो न तो समझते ही बनती है और न कहते ही।

सुनहु तात यह अकथ कहानी।
समुझत बनइ न जाइ बखानी॥
ईश्वर अंस जीव अविनासी।
चेतन अमल सहज सुख रासी॥
सो मायाबस भयउ गोसाईं।
बंध्यो कीर मरकट की नाईं॥

अर्थात् ईश्वर का अंश यह जीव अविनाशी, चेतन, निर्मल और स्वभाव से ही सुखी होते हुए भी माया के वशीभूत होकर तोते और बदर की तरह स्वयं ही बन्धन में बँध गया।

अज्ञान के कारण ही जीव माया से मोहित होता है। तब यह जीव सत्य और असत्य को अलग नहीं देख सकता। गोस्वामी जी कहते हैं।

जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई।
जदपि मृषा छूटत कठिनई॥
तब ते जीव भयउ संसारी।
छूट न अधिक-अधिक अरूझाई॥

इस प्रकार माया के वश जड़ और चेतन की ग्रन्थि पड़ गयी। अर्थात् कौन सा जड़ और कौन सा चेतन पदार्थ है यह समझ में नहीं आता, क्यों कि दोनों की गांठ पड़ गयी और वह गांठ मिथ्या होते हुए भी छूटने में कठिन है। तब से ही जीव संसार में जन्म लने और मरने वाला हो गया और अब न तोगांठ टूटती है और न वह सुखी होता है।

यह अज्ञानांधकार ही है जिसमें वह रज्जु को सर्प देखता है, विषयों को सत्य और नित्य वस्तु समझता है और ईश्वर के अस्तित्व के प्रति संदिग्ध रहता है। वह सब उल्टा ही उल्टा देखता है। गोस्वामीजी ने काकभुशुण्डि जी के मुख से इस दशा को नयन दोष बताया है। ऐसा होने पर जीव की दशा क्या होती है?

नयन दोष जा कहँ जब होई।
पीत बरन ससि कहुँ कह सोई॥

यदि किसी व्यक्ति को पीलिया रोग हो तो वह श्वेतवर्ण चन्द्रमा को भी पीला देखता है। उसी प्रकार

जब जेहि दिसि भ्रम होई खगेसा।
सो कह पच्छिम उगउ दिनेसा॥

जब किसी व्यक्ति को दिशा भ्रम हो जाय तो वह कहता है कि सूर्य पश्चिम में उदित हुआ है उसी प्रकार

नौकारूढ़ चलत जग देखा।
अचल मोह बस आपुहि लेखा॥

चलती हुई नौका में बैठा व्यक्ति भी नौका को और नौका में बैठे स्वयं को अचल देखता है और नदी के दोनों किनारों और किनारों पर खड़ी अट्टालिकाओं को स्थिर होते हुए भी चलायमान देखता है।

इस प्रकार का नयन दोष होने पर ही जीव जन्म मरण के चक्कर में पड़ता है, वह विषयों को ही सत्य मानता है। नित्य मानता है और उसी में सुख खोजता हुआ सर्वदा अपने को ठगता रहता है। जो अनश्वर, सत्य, नित्य, और आनन्द स्वरूप परमात्मा है, उसे असत्य जानकर ठुकराता रहता है और कहता है कि ईश्वर है ही नहीं। वह तो यह भी नहीं जानता कि वह मायाबद्ध है, उसे नयन दोष हुआ है। मुक्ति भी कोई वस्तु है, उसे नह मालूम और इसीलिए ऐसे घोर संसारी व्यक्ति में ईश्वर, दर्शन की लालसा और मोक्ष प्राप्ति की कामना होती ही नहीं। उसे किसी गुरु के पास जाकर शिष्य बनने की प्रेरणा कैसे हो सकती है? क्योंकि उसे गुरु बनाने का कोई प्रयोजन ही नहीं है। ऐसे व्यक्ति के लिए श्रीरामकृष्ण देव ने एक बहुत ही सुन्दर उपमा दी है। जो मछली जाल में ता पड़ जाती है पर उसे यह मालूम ही नहीं कि वह जाल में फंसा है और वह अपने मुख को तालाब

की कीचड़ में छुपाकर सोचती है, यह बहुत सुख में है, उस मछली को तो काल के कराल गाल में जाना ही होगा और उसका मुक्ति नहीं। उसी प्रकार जो जीव जानता ही नहीं कि वह बन्धन में है और माया जाल में फंसा हुआ विषयों की कीचड़ में मुख छुपाए सोचता है कि वह बड़ा सुखी है, ऐसा मनुष्य बद्ध जीव है।

धर्म-पिपासा

इसीलिए केवल मनुष्य शरीर प्राप्त होने से ही गुरुकृपा नहीं होती। रोगी यदि यह न जाने कि वह रोगी है तो रोग निवारण के लिए वह वैद्य के पास जाएगा ही नहीं। उसी प्रकार जब तक मनुष्य नहीं जान लेता कि उसे भवरोग ने ग्रस्त किया है. वह भवरोग निवारणार्थ सद्गुरु के पास जाएगा ही नहीं। अतः माया बन्धन का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। उसे नयन-दोष हुआ है, इसका भान होना आवश्यक है। बन्धन उसका वास्तविक स्वरूप नहीं है। विषयों में सुख नहीं है। यह संसार अनित्य है, नश्वर है और क्षणिक है—ऐसा ज्ञान होने पर ही मनुष्य सोचने लगता है, तो सत्य क्या है? नित्य स्थायी सुख और आनन्द किसमें है? मेरा क्या स्वरूप है? मैं क्या हूँ? मैं संसार में क्यों आया? इत्यादि जिज्ञासा उत्पन्न होने पर ही मनुष्य को यह ज्ञान होता है कि वह माया जाल मे फँसा है और उसे इस माया जाल से निकलना ही है। श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि और एक प्रकार की मछली होती है जो यह जान लेती है कि वह जाल में फँस चुकी है। और वह उससे निकलने के लिए छटपटाती है और बाहर निकलने का प्रयास करती है। उसी प्रकार वह मनुष्य जो अपने को माया जाल मे बँधा देखकर उससे निकलने के लिए छटपटाता है। उसे श्रीरामकृष्ण देव ने मुमुक्षु जीव कहा है। धर्म पिपासा न होने तक मनुष्य शिष्यत्व ग्रहण नहीं करता है।

शिष्य की मनोवृत्ति—मिथ्याभिमान का त्याग

केवल धर्म-पिपासा का होना ही यथेष्ट नहीं है। यह तो आध्यात्मिकता का मार्ग है। "स्वामी जी कहते हैं, आध्यात्मिककता की प्राप्ति में एक महत्वपूर्ण वस्तु शिष्य की मनोवृत्ति है, जब अधिकारी योग्य होता है तो दिव्य प्रकाश का अनायास आविर्भाव होता है।" (वि० सा० III—१६०)

धर्म पिपासु यदि आध्यात्मिकता के मार्ग पर चलना चाहें तो उसे गुरु की आवश्यकता तो है ही किन्तु उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है शिष्य की मनोवृत्ति।

यदि शिष्य गुरु के पास तो जाता है परन्तु अपनी बुद्धि को गुरु की बुद्धि से बड़ी समझता है तो वह संशयात्मा कभी भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। जैसे भरे हुए गिलास में दूध ढालने से बाहर ही गिरता है भीतर नहीं जाता उसी प्रकार जिस शिष्य के हृदय मे अपने ही विचारों को छोड़कर गुरु के उपदेशों का स्थान ही नहीं उसको उपदेश करना निरर्थक ही है। उससे शिष्य का अकल्याण ही होता है। अतः एक शिष्य को गुरुपरायण होना चाहिए और उसके उपदेशों पर पूरा विश्वास होना चाहिए।

रामचरित मानस में काकभुषुण्डिजी गरुड़जी को अपने पूर्व जन्म की कथा कहते हैं: एक बार कलिकाल मे बहुत वर्षों तक वे अयोध्या में रहे। अकाल पड़ने पर विपत्ति के कारण विदेश में गये। कुछ समय वहाँ रहने पर उन्हें कुछ संपत्ति मिली और वे वहीं रहकर भगवान शंकर की आराधना करने लगे। वहाँ उन्होंने एक ब्राह्मण को गुरु बनाया जो सर्वदा भगवान् शंकर की पूजा करते थे और अन्य कोई भी कार्य नहीं करते थे। यद्यपि वे भगवान् शिव की पूजा करते थे किन्तु कभी भी उन्होंने भगवान् श्रीहरि की निन्दा नहीं की। काकभुषुण्डिजी कहते हैं कि उन्होंने अपने गुरु देव के इस भाव को स्वीकार नहीं किया। वे भगवान्

विष्णु के भक्तों से द्रोह करते थे। गुरु देव ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया कि भगवान् शिव की आराधना से श्री राम के चरणों में अचल भक्ति होती है। किन्तु दम्भ और अभिमान के कारण उन्होंने गुरु के वचनों को न माना। अपने को गुरु देव से अधिक बुद्धिमान समझने लगे। गुरु में संशय करने वाले इस दुर्बुद्धि शिष्य को यह सहन नहीं हुआ कि गुरुदेव ने भगवान् शिव को श्रीरामका दास कहा था। अतः वह दिन रात गुरु से द्रोह करने लगा। एक दिन वे शिवजी के मंदिर में जप कर रहे थे उस समय गुरुदेव के आने पर उन्होंने उठकर गुरुदेव को प्रणाम नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि उनके इष्ट देवता ने ही उन्हे शाप दे दिया।

"मंदिर मांझ भई नभवानी।
रे हतभाग्य अग्य अभिमानी।
जद्यपि तव गुरु के नहिं क्रोधा।
अति कृपालचित सम्यक् बोधा॥
तदपि साप सठ दैहउँ तोही।
नीति विरोध सोहाइ न मोही॥

अर्थात मंदिर में आकाशवाणी हुई कि रे हतभाग्य! मूर्ख और अभिमानी! तू अपने को गुरु से अधिक ज्ञानी समझता है और इसीलिए मूर्ख भी है और अभिमानी भी। किन्तु तेरे गुरुदेव यथार्थ ज्ञानी हैं। क्योंकि उन्हें क्रोध नहीं आता। वे अत्यन्त कृपालु चित्त के हैं। तब भी मैं तुझे शाप दूँगा क्योंकि नीति के विरुद्ध बातें मुझे नहीं सुहाती।

"जौं नहीं दंड करौं खल तोरा।
भ्रष्ट होई श्रुति मारग मोरा॥

अर्थात् 'यदि मैं तुझे दण्ड न दूँ तो वेद का मार्ग ही भ्रष्ट हो जाएगा।" और आकाशवाणी के द्वारा भगवान् शंकर ने शाप दिया।

जे सठ गुरु सन इरिषा करहीं।
रौरव नरक कोटि जुग परहीं॥
त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा।
अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा॥
बैठे रहेसि अजगर इव पापी।
सर्प होहि खल मल मति ब्यापी॥
महा बिटप कोटर महुँ जाई।
रहु अधमाधम अवगति पाई॥

अर्थात जो मूर्ख गुरु से ईर्ष्या करते हैं वो रौरव नरक में पड़ते हैं। फिर वहाँ से निकलकर पशु-पक्षियों की योनियों मे शरीर धारण करते हैं। और दस हजार जन्मों तक दुःख पाते रहते हैं। अरे पापी! तू गुरु के सामने अजगर की भाँति बैठा रहा उसे उठकर सम्मान भी नहीं दिया। रे दुष्ट! तेरी बुद्धि पाप से भरी हुई है अतः तू सर्प हो जा और अरे अधम से भी अधम! तू इस अधोगति को पाकर किसी बड़े भारी पेड़ के खोखले में जाकर रह।

गुरु बड़े कृपालु होते हैं। शिष्य दुष्ट होने पर भी उनका हृदय सब समय शिष्य की मंगल-कामना करता है। उनके हृदय में तो न राग होता है और न ही अभिशाप देने की कामना। अतः आकाशवाणी सुनकर और शिष्य को थर-थर कांपते हुए देखकर तथा शाप वश उसकी भयंकर गति देखकर वे भगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम कर गद्गद् वाणी से विनती करने लगे। तब उनकी स्तुति से भगवान् शंकर प्रसन्न हुए और ब्राह्मण का प्रेम देखकर भगवान् शंकर ने पुनः आकाशवाणी द्वारा कहा, 'हे द्विजश्रेष्ठ! तुम वर मांगो। तब ब्राह्मण ने कहा—

संकर दीन दयाल अब एहि पर होहु कृपाल।
साप अनुग्रह होइ जेहि नाथ थोरे हीं काल॥

हे दीनों पर दया करने वाले (कल्याणकारी शंकर। अब इस पर कृपालु होइये जिससे हे नाथ! आपका यह भयंकर शाप थोड़े ही समय के लिए हो और वह शीघ्र ही इससे मुक्त हो जाय।

भगवान् शंकर ने ब्राह्मण गुरु के कारण शिष्य पर कृपा की—

जदपि कीन्ह दारुण एहिं पापा।
मैं पुनि दीन्हि कोप करि सापा॥
तदपि तुम्हार साधुता देखी।
करिहउँ एहि पर कृपा विसेषी॥

---हे ब्राह्मण ! यद्यपि इसने भयानक पाप किया है और मैंने क्रोध मे इसे शाप भी दे दिया है, तो भी तुम्हारी साधुता देखकर मै इस पर विशेष कृपा करुँगा।

"मोर साप द्विज व्यर्थ न जाइहि।
जन्म सहस्र अवस्य यह पावहि॥"
जनमत मरत दुसह दुख होई।
एहि स्वल्पउ नहिं व्यापिहि सोई॥
कवनेऊँ जन्म मिटिहि नहि ग्याना।

अर्थात् हे द्विज, मेरा शाप तो अब व्यर्थ नहीं जाएगा। यह हजार जन्म अवश्य पावेगा। परन्तु जन्मने और मरने का दुसह दुःख उसे नही व्यापेगा और किसी भी जन्म में उसका ज्ञान नहीं मिटेगा।

उसके बाद भगवान् शंकर ने गुरु में संशय करने वाले इस शिष्य को 'शूद्र' ऐसा सम्बोधन —करते हुए कहा।

रघुपति पुरी जन्म तव भयऊ।
पुनि तैं मम सेवा मन दयऊ॥
पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरे।
राम भगति उपजिहि उर तोरे॥

अर्थात् कर्म तो तूने शूद्र जैसे किये किन्तु एक तो तेरा जन्म भगवान् राम की पुरी में हुआ और फिर तूने मेरी सेवा में मन दिया इसी लिए अयोध्या धाम के प्रभाव से और मेरे अनुग्रह से अब तेरे हृदय में राम-भक्ति उत्पन्न होगी।

ऐसा वर देते हुए भगवान् शंकर ने उपदेश किया—

सुनु मम बचन सत्य अब भाई।
हरि तोषन ब्रत द्विज सेवकाई॥
अब जनि करहि बिप्र अपमाना।
जानेसु संत अनंत समाना॥
इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला।
काल दण्ड हरि चक्र कराला॥
जो इन्ह कर मारा नहिं मरई।
बिप्र द्रोह पावक सो जरई॥

हे भाई ! अब तू मेरा सत्य वचन सुन ! ऐसा कहकर भगवान् शंकर ने अपना मत प्रकट किया जो सभी शिष्यों के लिए अनुसरणीय है ! उन्होंने कहा, "द्विजों (गुरु जनों) की सेवा भगवान् को प्रसन्न करने वाला है। अब कभी ब्राह्मण (गुरु) का अपमान न करना। संतों को अनन्त भगवान् श्री हरि के समान ही मानना। इन्द्र के वज्र और मेरे विशाल त्रिशूल, काल के दण्ड और श्रीहरि के चक्र के मारे भी जो नहीं मरता वह भी यदि विप्र द्रोही हो, गुरु द्रोही हो तो उस विप्रद्रोह की अग्नि में भस्म हो जाता है।"

भगवान् शंकर ने इस प्रकार उपदेश करके इस उपदेश के पालन करने का फल भी वर्णन किया।

अस विवेक राखहु मन माहीं।
तुम्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

अर्थात ऐसा विवेक जो व्यक्ति मन मे रखेगा उसके लिए जगत में कुछ भी दुर्लभ नहीं।

अन्त मे भगवान् शंकर ने प्रसन्न होकर वर दिया 'अप्रतिहत गति होइहि तोरी।" अर्थात् तेरी सर्वत्र अबाध गति होगी।

राम चरितमानस की इस गाथा से हमें यही तथ्य प्राप्त होता है कि शिष्य को गुरुदेव के प्रति अश्रद्धा नहीं होनी चाहिए उस पर विश्वास होना चाहिए।

गुरु पर संशय करने वाले एक और शिष्य का वृत्तान्त हमें राम चरित मानस में मिलता है।

एक बार ऐसा सुख में भगवान् शंकर ने मुनिवर अगस्त्य जी से राम कथा सुनी और ऋषिवर को अधिकारी जानकर रहस्य के साथ अर्थात् तत्त्व के साथ भगवान् श्रीहरि की भक्ति का निरूपण किया। तदुपरान्त वे सतीजी के साथ कैलास लौट चले।

उसी समय की बात है। भगवान् श्री हरि ने भूमि का भार हरण कर धर्म संस्थापना के लिए रघुवंश में अवतार लिया था। वही अविनाशी प्रभु पिता दशरथ जी की आज्ञा से अयोध्या का राज्य परित्याग कर वल्कल वस्त्र धारण कर वन-वन घूम रहे थे। श्री राम की आद्याशक्ति माता जानकी को रावण चुरा कर ले गया। मूर्ख रावण ने तो कालवश ऐसा किया, परन्तु इधर भगवान् राम सोने के मृग का शिकार कर जब लौटे और जानकी जी को आश्रम में नहीं पाया तो मनुष्यों की भांति विरह से व्याकुल हो उठे और लक्ष्मण सहित भगवान् राम रोते बिलखते सीता जी को खोजते हुए वन-वन में भटक रहे थे।

ऐसे समय में भगवान् शंकर के हृदय में भगवान् श्रीराम के दर्शनों की लालसा उठी। समस्या बड़ी विकट थी। यदि कोई राजा गुप्तवेश में अपने राज्य में प्रजा के कल्याण के लिए घूम रहा हो तो आम जनता उसे एक साधारण नागरिक ही समझती है और यह नहीं जान पाती कि वह राजा है। दुष्ट लोग मनमानी करते फिरते हैं। और उनकी दुष्टता गुप्तवेशी राजा की दृष्टि में पड़ जाती है। किन्तु यदि राजा का मंत्री सामने पड़ जाए तो राजा को उस वेश में देखकर भी मंत्री उन्हें पहचान तो लेता है, परन्तु बात-चीत नहीं कर सकता। ऐसा करने से सारा भंडा फूट जाएगा। लोग राजा को पहचान लेंगे और दुष्ट लोग छुप जायेंगे। किन्तु यदि मंत्री का मन यह देखने के लिए ललचा जाए कि उस वेष में राजा कैसे लगते हैं, तो वह क्या करे? यह चिन्ता मंत्री को लग ही जाएगी। ठीक वैसी ही दशा भगवान शंकर की हो गयी। वे ऐसा सोच ही रहे थे कि उन्होंने सामने भगवान् राम को लक्ष्मण सहित रुदन और विलाप करते हुए भटकते देखा। परम ज्ञानी, श्री हरि की लीलाओं के ज्ञाता, सर्वज्ञ भगवान् शिव यह दृश्य देखकर अभिभूत हो गये तथा आनन्द और हर्ष से भर गये क्योंकि एक ओर तो वे उन सच्चिदानन्द-परमानन्द-स्वरूप भगवान् को जानते हैं कि वे योग-वियोग से ऊपर हैं और अब सामने जो नाटक देख रहे हैं कि वही भगवान् श्रीराम स्त्री-विरह में विलाप कर रहे हैं।

कबहूँ जोग वियोग न जाकें।
देखा प्रगट बिरह दुख ताकें॥

"अति विचित्र रघुपति चरित्त जानहि परम सुजान।" भगवान राम की विचित्र लीला को पहुँचे हुए ज्ञानीजन ही समझ पाते हैं। अतः इस लीला को देखते हुए दूर से ही उन्होंने अपने इष्ट देव को यह कहते हुए प्रणाम किया।

जय सच्चिदानन्द जग पावन।
अस कहि चलेउ मनोजनसावन॥
चले जात सिव सती समेता।
पुनि पुनि पुलकित कृपा निकेता॥

हे जग को पवित्र करने वाले सच्चिदानन्द प्रभु! आपकी जय हो। इस प्रकार कहते हुए काम का नाश करने वाले भगवान शंकर अपने पथ पर आगे चले। कृपा निधान शिवजी बार-बार पुलकित होते हुए सती जी के साथ चल रहे थे।

भगवान शंकर जगतवंद्य और परमेश्वर हैं। भगवान के दिव्य जन्म और कर्म को तत्त्व से जानते हैं इसीलिए उनकी ऐसी दशा हो रही थी। किन्तु उनकी शक्ति स्वरूपा सतीजी की मनोदशा कुछ और ही थी। भगवान शंकर की ऐसी दशा देखकर उनके मन में एक बड़ा भारी सन्देह उत्पन्न हुआ।

संकरु जगत वंद्य जगदीसा।
सुर नर मुनि सब नावत सीसा॥

तिन्ह नृप सुतहि कीन्ह ...।
कहि सच्चिदानन्द परधामा ॥
भए मगन छवि तासु बिलोकी।
अजहूँ प्रीति उर रहति न रोकी॥

अर्थात् भगवान शंकर जगत-वन्दनीय और जगत के ईश्वर हैं। देवता, मनुष्य, मुनिगण सब उन्हें प्रणाम करते हैं, उन्हीं भगवान शंकर ने एक राजपूत को जय सच्चिदानन्द परमधाम कहकर प्रणाम किया और उनकी शोभा देखकर वे इतने प्रेम मग्न हो गये कि अब तक उनके हृदय में प्रीति रोकने से भी नहीं रुकती। सतीजी की यह समस्या उनके हृदय में उठे संशय के कारण ही थी। यह संशय उन्हें इतना युक्तियुक्त लग रहा था कि भगवाम शंकर के व्यवहार के सम्बन्ध में भी उन्हें संशय हो गया। अपनी बुद्धि से भगवान् शंकर के विचारों को तौलने लगीं—उचित-अनुचित की जाँच करने लगीं। और उनकी कसौटी यह थी :—

ब्रह्म जो व्यापक विरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होई नर जाहि न जानत वेद॥

अर्थात् जो ब्रह्म सर्वव्यापक, माया रहित अजन्मा, अगोचर, इच्छा रहित और भेद रहित है और जिसे वेद भी नहीं जानते क्या वह देह धारण करके मनुष्य हो सकता है?

इस संशय के कारण ही उनके मन में ज्ञान नहीं हो पा रहा था पर वे प्रकट में कुछ भी न कह पा रही थीं। भगवान शिव के साथ सतीजी का शरीर तो चला, पर मन नहीं मिला।

भगवान शिव तो अंतर्यामी हैं। उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से यह सब देख लिया और वे सती जी से बोले—

जासु कथा कुंभज रिषि गाई।
भगति जासु मैं सुनहि सुनाई॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा।
सेवत जाहि सदा मुनि धीरा।

हे सती, सुनो, तुम्हें ऐसा सन्देह मन में कभी नहीं रखना चाहिए कि जिनकी कथा का अगस्त्य ऋषि ने गान किया और जिनकी भक्ति मैंने ऋषिवर को सुनायी, जिनकी सेवा ज्ञानी मुनि करते रहते हैं वे और मेरे इष्टदेव रघुकुल शिरोमणि दशरथराम भिन्न हैं।

ज्ञानी, मुनी, योगी और सिद्ध जन निर्मल मन से जिन परमात्मा का ध्यान करते हैं। वेद पुराण शास्त्र नेति-नेति कहकर जिनकी कीर्ति गाते हैं उन्हीं सर्वव्यापक समस्त ब्रह्माण्डों के स्वामी, माया पति नित्य परम स्वतंत्र ब्रह्म रूप भगवान ने ही भक्तों के हित के लिए अपनी इच्छा से दशरथनंदन के रूप में शरीर धारण किया है।

"लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिवँ बार बहु।"

भगवान शंकर के बार-बार समझाने पर भी सतीजी को भगवान शिव का उपदेश बैठा नहीं। भगवान शंकर ने कहा यदि मुझ पर विश्वास नहीं हो तो उस सत्य की स्वयं परीक्षा ले लो। अब अपने विवेक-विचार द्वारा (गुरु के नहीं) ऐसा ही करो जिससे तुम्हारा भ्रम मिट जावे। सतीजी तुरन्त श्रीराम की परीक्षा लेने चली। गुरु के प्रति अश्रद्धा और अविश्वास शिष्य के लिए सबसे बड़ी बाधा होती है। गुरु के ज्ञान और उसकी अनुभूति पर ही संदेह हो उठता है। इससे बढ़कर शिष्य का अकल्याण और क्या हो सकता है भगवान् शंकर ने अपने मन में परिणाम का अनुमान किया।

इहाँ संभु अस मन अनुमाना।
दच्छ सुता कहुँ नहीं कल्याना॥
मोरेहु कहें न संशय जाहीं।
विधि विपरीत भलाई नाहीं॥

अर्थात् इधर शिवजी ने यह समझ लिया कि अब दक्षसुता का अकल्याण निश्चित है क्योंकि जब मेरे समझाने से भी उनका संशय दूर नहीं होता तब विधाता ही उलटे हैं, अब सती का कुशल नहीं है।

भगवान् राम पर भावी की भावना छोड़कर भगवाना शंकर जप करने लगे और सती जी वहाँ पहुँची जहाँ प्रभु राम लक्ष्मण सहित सीता-विरह में विलख रहे थे। गुरु विमुख होने पर सबसे पहले संशय और अविश्वास होता है। फिर आता है कपट। इस कपट के उपस्थित होते ही सती जी ने सीताजी का रूप धारण कर लिया। श्रीरामकृष्ण देव की भाषा में भीतर बाहर एक नहीं रहा।

सती जी को सीता के वेष में देखते ही सर्वज्ञ प्रभु राम उनके कष्ट को समझ गये। और आगे बढ़कर अपने पिता का नाम बताते हुए उन्हें प्रणाम किया और पूछा, कहिए वृषकेतु भगवान शिव को कहाँ छोड आयीं ? और यहाँ वन में आप अकेली क्यों फिर रही हैं ?

ऐसे रहस्य भरे वचनों को सुनकर सतीजी को बड़ा संकोच हुआ और वे डरती हुई शिवजी के पास लौट चलीं। और सोचने लगीं कि :—

मैं शंकर कर कहा न माना।
निज अग्यानु राम पर आना॥
जाइ उतरु अब देहउँ काहा।
उर उपजा अति दारून दाहा॥

मैंने भगवान शंकर का कहना नहीं माना और अपने अज्ञान का श्रीरामजी पर आरोप किया। अब मैं शिवजी को क्या उत्तर दूँगी ? इस प्रकार की चिन्ता में सतीजी जलने लगीं।

इस वार्तालाप से भगवान ने यह जता दिया कि सतीजी आप सोचती हैं कि भ्रम राजा दशरथ के पुत्र रामको हुआ है जो सीता के विरह में वन में दर-दर भटक रहा है। परन्तु बात यथार्थ में ऐसी है कि भ्रम तो आपको हुआ है जो मेरे सर्वज्ञ सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान परब्रह्म रघुरूप को नहीं देख पा रहीं और मैं तो सीता रूपधारणी सती में सती को ही देख रहा हूँ। मैं वन वन भटकता हुआ प्रतीत होते हुए भी स्थिर हूँ और मेरी दृष्टि सत्य को ऐसा ही देखती हैं जैसा कि वह है परन्तु हे सतीजी, आप स्थिर दिखाई देते हुए वन-वन भटक रही हैं। आप की दृष्टि सत्य को उसके विकृत रूप में देख रही है। परब्रह्म सच्चिदानन्द राम को राजा का पुत्र राम देख रही हैं। जिसे न योग है न वियोग, उसे सीता-विरह में जलते देख रही हैं। मैं नहीं जल रहा अब आप ही चिन्ता में जल रही हैं।

इस रहस्यमयो वार्ता को भगवान राम ने सती जी को नेत्रों से भी दिखा दिया। सतीजी ने देखा तो वे चकित हो गयीं। उनके आगे-आगे भगवान् राम और लक्ष्मण और सीता जी जा रही हैं। उन्होंने पीछे मुड़कर विरही राम को खोजना चाहा तो वहाँ और एक दृश्य देखा। श्रीराम लक्ष्मण और सीता। वे जिधर देखतीं उधर ही श्रीराम आसीन हैं और सुचतुर सिद्ध मुनिजन उनकी सेवा कर रहे हैं। सतीजी ने अनेक शिव ब्रह्मा और विष्णु देखे। अनगिनत सती ब्रह्माणी और लक्ष्मी देखी। अपनी अपनी शक्तियोंके साथ सभी देवताओं को देखा। संसार में जो चराचर जीव हैं उन्हें भी अनेक प्रकार के देखा। श्रीरघुनाथ और सीताजी भी अनेक देखे पर उनका वेश एक ही था। प्रभु की यह लीला देखकर सती जी का सिर चकराने लगा वे आंख मूंद कर बैठ गयीं पुनः आँख जब खुलीं तो वहाँ कुछ भी नहीं था, वे अकेली ही थीं। अब श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में प्रणाम कर वे वहाँ चलीं जहां शिव जी थे।

किन्तु विचित्र घटना तो अब यह हुई कि सती जी को पहले संशय ने घेरा, फिर गुरु में अश्रद्धा हुई, तदुपरन्त अहंकार और दम्भ के कारण गुरु वाक्य की परीक्षा लेने चलीं; फिर कपट से सीता जी का का रूप बनाया और अब जब शिव जी ने पूछा कि परीक्षा की कि नहीं; तो झूठ बोल दिया—

कछु न परीक्षा कीन्ही गोसाईं।
कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं॥

भगवन शंकर ने ध्यान करके सती जी की सभी करतूतों को देखा और भगवान राम की माया को

नमस्कार किया जिसने सतीजी जैसी परम पवित्र देवी से भी झूठ बुलवाया।

हरि इच्छा भावी बलवाना।
हृदय विचारत संभु सुजाना॥

भगवान की इच्छा और भावी प्रबल देख कर भगवान शंकर ने प्रकट में कुछ न कहा परन्तु मन ही मन सती जी को त्याग दिया।

परिणाम यह हुआ कि भगवान शंकर के विमुख भाव से सतीजी तप्त होती रहीं। अंत में दक्ष-यज्ञ में अपना शरीर भस्म करके उन्होंने पुनः हिमालय पर्वतराज की पुत्री के रूप में जन्म लिया। कठोर तपस्या और अटूट निष्ठा के फलस्वरूप पुनः भगवान शंकर के साथ उनका विवाह सम्पन्न हुआ। पार्वती के रूप में अब वे भगवान शिव की सेवा में लगीं।

काकभुशुण्डि जी के पूर्व जन्म की कथा और पार्वती जी के पूर्व जन्म अर्थात् सती जी की कथा से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुरु के प्रति पूर्ण श्रद्धा, विश्वास और समर्पण प्रत्येक शिष्य के लिए आवश्यक है। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं—"सबसे आवश्यक बात यह है कि हम अपने मिथ्याभिमान को तिलांजलि दे दें यह अभिमान कि हमें कुछ अध्यात्मिक ज्ञान है। और श्री गुरु के चरणों में सम्पूर्ण आत्मसमर्पण कर दें। केवल श्री गुरु ही जानते हैं कि कौन सा मार्ग हमें पूर्णत्व की ओर ले जाएगा। वि०सा० III-१८९) फिर कार्य-सिद्धि अवश्यम्भावी है। इसका रहस्य है, गुरु भक्ति, मृत्यु पर्यन्त गुरु में विश्वास। (वि०सा० ३४६)

श्री गुरु चरणों में पूर्ण समर्पण

शिष्य को यह रत्ती भर भी भ्रम नहीं होना चाहिए कि वह गुरु से अधिक ज्ञान सम्पन्न है। मुझ-में अज्ञान है और उसका हरण केवल मेरे गुरु देव ही कर सकते हैं। मुझे तो उनके बताये मार्ग पर निष्ठा और भक्ति के साथ चलना है, बस ऐसी ही शिष्य की मनोवृत्ति होना अनिवार्य है।

यही भाव दूसरे जन्म में पार्वती जी को भगवान शिव के प्रति रहा। वे कहती हैं;

जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी?
जानिअ सत्य मोहि निज दासी॥
तौं प्रभु हरहु मोर अग्याना।
कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना॥

हे सुख के राशि! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और सचमुच मुझे अपनी सच्ची दासी जानते हैं, तो हे प्रभु! आप श्री रघुनाथ जी की नाना प्रकार की कथा कह कर मेरा अज्ञान दूर कीजिए। अर्थात् अब मेरा मन पूर्ण रूप से समर्पित है अब आप ही जानें कि मेरा अज्ञान किससे दूर होगा: मैं पूर्व जन्म की भांति गुरु विमुख नहीं हूँ।

तब कर अस बिमोह अब नाहीं।
राम कथा पर रुचि मन माहीं॥

मुझे अब पहले जैसा मोह नहीं है: अब तो मेरे मन में राम कथा सुनने की रुचि है।

अति आरति पूँछउँ सुर राया।
रघुपति कथा कहहु करि दाया॥

हे देवताओं के देव महादेव! पूर्व जन्म में तो मेरे न पूछने पर भी कृपा करके मुझे बहुत समझाया था परन्तु मैं ही दम्भ के कारण संशय में फँसी हुई आप की बात न समझ सकी किन्तु इस जन्म में मैं बहुत ही आर्तभाव से दीनतासे पूछती हूँ। आप मुझ दासी पर दया करके श्री रघुनाथ जी की कथा कहिए।

मैंने मोह वश पूर्व जन्म में आप के उपदेशों की अवहेलना की थी किन्तु अब मैं अच्छी प्रकार से समझ गयी हूँ कि आपका कहना सर्वदा अनुसरणीय है क्योंकि हे प्रभो!

तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना।
आन जीव पाँवर का जाना॥

वेदों ने आप को तीनों लोकों का गुरु कहा है। दूसरे पामर जीव इस रहस्य को क्या जानें?

प्रत्येक शिष्य को अपने गुरु के सम्बन्ध में ऐसी ही धारणा होनी चाहिए कि गुरु और ईश्वर एक हैं। ★

धर्मनिष्ठ व्याध

स्वामी विवेकानन्द

[अपना-अपना कार्य करते हुए भी गृहस्थ धर्म एवं कर्त्तव्य का सटीक पालन करने से मनुष्य देवता में परिणत हो जाता है।]

ईश्वर प्राप्ति के लिए कठिन साधना करनी पड़ती है। सांसारिक मायाजाल में आबद्ध हो साधना करना अत्यंत कठिन है। इसलिए अधिकांश व्यक्ति संसार को त्याग वन में जाकर तपस्या करते हैं।

ईश्वर को प्राप्त करने की तीव्र इच्छा एक युवक में जागृत हुई। अतः सब कुछ त्याग वह वन में जाकर तपस्या करने लगा। धीरे-धीरे बारह वर्ष व्यतीत हो गये।

एक दिन वह पेड़ के नीचे बैठकर विश्राम कर रहा था। ठीक उसी समय कुछ सूखी पत्तियाँ उसके सिर पर आकर गिरीं। संन्यासी ने ऊपर पेड़ों की ओर देखा। उसने देखा कि दो पक्षियों में लड़ाई हो रही थी। उनमें से एक बगुला था और दूसरा कौआ। सन्त क्रुद्ध हो गए एवं उन्होंने कहा 'तुम लोगों की यह हिम्मत? मेरे सिर पर पत्तियां गिरा रहे हो।"

इतना कहकर संन्यासी ने क्रोधपूर्ण नेत्रों से पक्षियों की ओर देखा। उसी क्षण उनकी आँखों से अग्नि निकलकर उन पक्षियों को भस्मसात कर दिया। अनेक दिनों की कठिन तपस्या करने के पश्चात् मनुष्य में अद्भुत शक्तियाँ आ जाती हैं। उस युवक में भी उसी तरह की अलौकिक शक्तियाँ आ गयी थीं। अपने में इस शक्ति का सन्धान पा संन्यासी के मन में अहंकार की भावना पैदा हो गयी।

कुछ दिनों के बाद वे भीख माँगने के लिए एक गाँव में गये। एक घर के सामने जाकर उन्होंने कहा 'माँ मुझे कुछ खाने के लिए दीजिए।"

एक महिला ने भीतर से जवाब दिया, "थोड़ी देर प्रतीक्षा करो।" इस बात को सुनकर एवं देर होने के कारण संन्यासी जल-भुन कर रह गये। उन्होंने मन ही मन सोचा, "अरे अभागिनी, तुझे घमंड हो गया है। तू मुझे प्रतीक्षा करने के लिए कह रही है। तुझे यह मालूम नहीं कि मेरे अंदर कितनी शक्ति है!

तत्पश्चात् संन्यासी ने सुना कि वह महिला अंदर से ही कह रही है, "स्वयं पर इतना घमण्ड न करो। यह तुम्हारे कौए और बगुले को भस्म कर देनेवाली बात नहीं है, जरा इंतजार करो मैं आ रही हूँ।"

संन्यासी दंग रह गये। कैसे महिला ने उनके मन की बात एवं कौए वाली घटना को जाना, यह उनकी समझ में नहीं आ रहा था। संन्यासी का घमंड तो उसी वक्त चूर हो गया एवं वे उस महिला का इंतजार करने लगे।

कुछ देर बाद एक महिला आयी और संन्यासी के समक्ष खड़ी हो गयी। उनके चरणों का सादर प्रणाम कर संन्यासी ने प्रश्न किया, "माँ तुमने मेरे मन की बात कैसे जानी, यह भी कैसे जाना कि क्रोधवश मैंने कौए और बगुले को भस्म कर दिया था?"

महिला ने उत्तर दिया, "बाबा मुझे कोई विशेष योग्यता तो प्राप्त है नहीं। मैं तो बस एक सामान्य महिला हूँ। मैंने तुम्हें प्रतीक्षा करने को इसलिए कहा कारण उस समय मैं अपने बीमार पति की सेवा कर रही थी। उनकी सेवा करना मेरा धर्म है न!"

संन्यासी ने कहा "माँ, तुम्हारी अद्भुत शक्ति का जैसा परिचय मैंने अभी पाया, दीर्घ साधना के उपरान्त भी ऐसी शक्ति नहीं प्राप्त की जा सकती। तुमने अवश्य योग-साधना के बल पर यह शक्ति पायी होगी।"

महिला ने शांत भाव से कहा, "नहीं महाराज, मैंने कभी योगसाधना नहीं की। मैंने तो बस हर पल, हर क्षण, तन्मयता से अपना कर्त्तव्य पालन किया है। यही मेरी तपस्या है और यही योग। हो सकता है कि मैंने इसी कारण इस शक्ति को प्राप्त किया।" संन्यासी आश्चर्यचकित होकर उस महिला की बातों को सुन रहे थे।

महिला ने पुनः कहा, 'देखो बाबा, शादी के पूर्व मैं अपने पिता के घर में थी। विवाह के उपरांत अब पति के साथ रहती हूँ। यहाँ आकर भी मैंने अपना यथोचित कर्त्तव्य पालन किया है इसके अलावा साधन-भजन की बातें मुझे ज्ञात नहीं।"

ऐसा भी हो सकता है कि यह संन्यासी ने कल्पना भी न की थी। उस महिला से कुछ और शिक्षा प्राप्ति के उद्देश्य से संन्यासी ने कहा. "माँ तुम मुझे कुछ उपदेश दो।"

महिला ने उत्तर दिया, "मैं क्या उपदेश दूँगी? यदि सचमुच तुम उपदेश पाना चाहते हो, यदि वस्तुतः तुम कुछ सीखना चाहते हो, तो हमारे शहर में जाओ। वहाँ बाजार में एक व्याध तुम्हें मिलेगा। तुम उसी के पास जाओ।"

व्याध से धर्म शिक्षा लेनी पड़ेगी, यह सुनकर संन्यासी आश्चर्यचकित रह गये। महिला की बात को अमान्य न करते हुए वे शहर गये। उस महिला के समक्ष शीश नवाकर वे शहर की ओर रवाना हुए। बाजार के निकट पहुँचते ही उनको कुछ दूरी पर एक कसाईखाना नजर आया। कसाई अपनी दुकान पर बैठ अपना काम कर रहा था और ग्राहकों से मोल-भाव कर रहा था। जैसा भारीपन था उसके स्वर में, वैसा ही विशालकाय था उसका शरीर। संन्यासी ने अनुमान लगाया कि यही वह व्याध होगा। लेकिन उसका रंग-रूप काम देखकर संन्यासी का मन घृणा से भर गया। उन्होंने सोचा "हे राम, इससे मैं धर्म-उपदेश लूँगा! देख रहा हूँ, यह तो जीवित पिशाच है।"

तब तक व्याध ने उन्हें देखा और कहा, "क्या आपको किसी महिला ने मेरे पास भेजा है?"

चकित होकर संन्यासी ने कहा, "जी हाँ" वे और कुछ न कह सके थे।

व्याध ने कहा, "अच्छी बात है, आप बैठिए। काम समाप्त होने पर मैं आप से बात कर पाऊँगा।"

संन्यासी को पहले ही उस स्थान से घृणा हो गयी थी। फिर भी उन्होंने कहा, "ठीक है।" व्याध पूरे मनोयोग से अपना कार्य किये जा रहा था। संन्यासी यह सब देख रहे थे। व्याध के कार्यों को जैसे-जैसे वे देखते, उनके मन में घृणा बढ़ती जाती। फिर भी वे बैठे ही रहे।

बहुत देर के बाद व्याध का कार्य समाप्त हुआ। रुपये गिनकर उसने अपने कपड़े में बाँध लिये। फिर उसने संन्यासी से कहा "बाबा आप मेरे घर चलिए।"

घर पहुँचकर संन्यासी को एक आसन देकर उसने कहा "बाबा, आप कुछ देर तक यहाँ बैठें। मैं अभी आ रहा हूँ।" संन्यासी बैठ गये और देखा कि व्याध हाथ-पैर धोकर अपने माता-पिता के समीप गया और बड़े प्यार से उन्हें खिलाया। फिर कुछ देर तक उनकी सेवा की। जब वे दोनों सो गये, तब

वह संन्यासी के पास आया। व्याध ने उनसे पूछा, "आप मुझसे मिलने आये हैं · कहिए मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?"

संन्यासी ने कहा, "मुझे कुछ प्रश्नों के उत्तर चाहिए। कृपया आप मुझे उन प्रश्नों का हल बताएँ।"

संन्यासी ने धर्म-सम्बन्धित अनेक बातें व्याध से पूछीं। व्याध बड़े सुन्दर ढंग से उन प्रश्नों का उत्तर देता गया। संन्यासी के आश्चर्य की सीमा न रही। जो व्यक्ति बाहर से नर-पिशाच लगता है, उसके अंदर इतना ज्ञान कैसे आया ! संन्यासी ने उससे अन्ततः पूछा, "इतने ज्ञानी होते हुए भी आप यह जघन्य कार्य क्यों करते हैं।"

मेरा कौन सा कार्य जघन्य है ? व्याध ने पूछा।

"क्यों, व्याध का कार्य ? पशुओं को काटकर उनका मांस बेचना जघन्य कार्य नहीं है ?"– तनिक उत्तेजित होकर संन्यासी ने कहा।

शान्त भाव से व्याध ने उत्तर दिया, "कार्य तो कार्य होता है, उसका जघन्य या सुन्दर रूप कैसा ? संसार में कोई कार्य न तो छोटा है न बड़ा, न जघन्य है न सुन्दर। मैं जो व्याध का कार्य करता हूँ उसे मैंने उत्तराधिकार-रूप में प्राप्त किया है। शिशु-काल से ही मैंने पारिवारिक व्यापार को सीखा है। जिस कार्य को मैंने पाया, जिसे सीखा, वह न करूँगा तो और क्या करूँगा ?"

संन्यासी ने पुनः पूछा, 'यह व्याध का कार्य करके ही आपने इतना ज्ञान अर्जित किया ?"

"अवश्य ही" व्याध ने कहा. 'इसके अलावा मैंने कोई साधना-तपस्या नहीं की है। मैं आपकी तरह वन में भी नहीं गया हूँ। मैंने जहाँ जन्म लिया है, जहाँ मेरा लालन-पालन हुआ है वहीं पर रह कर अपना कर्तव्य-पालन किया है। मैं अपने कर्तव्य से कदापि नहीं डिगता हूँ। यही कारण है कि मैंने धर्म ज्ञान प्राप्त किया है।"

कर्त्तव्य-पालन ही ज्ञान का द्योतक है। व्याध ने संन्यासी को जो उपदेश दिया, उन उपदेशों को संग्रहित कर "व्याध-गीता" का नाम दिया गया है। हिन्दू आज भी इस पुस्तक को श्रद्धा से पढ़ते हैं और उस कर्त्तव्यनिष्ठ व्याध को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

ग्राहकों से निवेदन

विवेक शिखा के कृपालु पाठकों को कष्ट के साथ सूचित करना पड़ता है कि कागज के मूल्य और छपाई की दर में अत्यधिक वृद्धि हो जाने के कारण १९९२ ई० में विवेक शिक्षा का वार्षिक सदस्यता शुल्क ३० रुपये और आजीवन सदस्यता शुल्क ५०० रु० होगा। हमें विश्वास है कि हमारे पाठक बन्धु इस आर्थिक भार को वहन करने में हमारा साथ देने की कृपा करेंगे।

निवेदक

व्यवस्थापक : विवेक शिखा

स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन-कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक - स्वामी विदेहात्मानन्द

लाटू महाराज ने काशी में एक बार बताया था—"स्वामीजी की इच्छा थी कि मठ के संन्यासी-गण हृष्ट-पुष्ट और बलवान हों। इसीलिए मठ में सबको डम्बेल (मुगदर) भाँजने को कहते थे। उन दिनों मैं मठ में था, स्वामीजी ने नियम बना दिया कि सबको मुगदर भाँजना होगा। उनकी बात सुनकर मैंने कहा, 'यह कौन सा एक मत चला दिया भाई! अब इस उमर में क्या हम लोगों को मुगदर भाँजना होगा? मैं तो तुम्हारा मुगदर न भाँज सकूँगा।' मेरी बात सुनकर स्वामीजी हँसते रहे।" ('उत्कथा' से)

एक दिन मठ में स्वामीजी गुरुभाइयों के समक्ष विभिन्न देशों में प्रचलित नानाविध पूजाओं के बारे में बोल रहे थे। उसी समय लाटू महाराज ने पूछा—"अच्छा भाई! तुमने तो बहुत से देशों का भ्रमण किया है, बहुत कुछ देखा है, बहुत कुछ सुना है, परन्तु क्या कहीं पर तुमने पृथ्वी-पूजा की बात सुनी है?'

स्वामीजी ने थोड़ा विस्मित होकर पूछा—'क्यों?'

लाटू महाराज—'जानते हो भाई! मैं तो देखता हूँ कि जो कुछ हुआ है, इस मिट्टी से ही हुआ है; यहाँ का जितना भी ऐश्वर्य है सब इस मिट्टी के ही सीने से चीरकर निकाला गया है; इसी की चीजें सभी खा रहे हैं, पहन रहे हैं, भोग कर रहे हैं; इसी की चीजें अपने घर में रखकर सब अपने को बड़ा समझते हैं! इसीलिए पूछ रहा हूँ कि जहाँ से लोग इतनी चीजें पा रहे हैं, उसी पृथ्वी को वे लोग पूजते हैं या नहीं?

स्वामीजी के पास ही शरत् महाराज बैठे हुए थे। लाटू महाराज की बात सुनकर स्वामीजी ने शरत् महाराज से कहा—'देखा न! लेटो कैसा प्लेटो के समान बातें कह रहा है!' उसके बाद वे लाटू महाराज की ओर उन्मुख होकर बोले अरे, इस देश (भारतवर्ष) को छोड़कर और कहीं भी वसुमती की पूजा नहीं होती।'

सबके सामने ही लाटू महाराज ने स्वामीजी से पूछा—'अच्छा भाई! उस देश के लोग वसुमती की पूजा नहीं करते तो भी इतने बड़े हो गये और इस देश के लोग वसुमती की पूजा करके भी इतने गरीब हो गये। क्या इसका कारण बता सकते हो?'

स्वामीजी ने उत्तर दिया—'अरे, हमारे पूजा करने से क्या होगा, हमारा पृथ्वी के प्रति लगाव कहाँ है? हम लोग फूल-तुलसी भले ही देते हों, पर दिल में तिल मात्र भी श्रद्धा भक्ति नहीं रखते। वे लोग पृथ्वी की पूजा नहीं करते, परन्तु वे इससे इतना प्यार करते हैं कि इसके लिए प्राण तक दे सकते हैं। हमारे देश में कितने लोग ऐसा कर सकते हैं? इसीलिए वे लोग हमसे आगे बढ़ गये हैं।'

स्वामीजी की बात सुनकर लाटू महाराज चुप

रह गये। उसके बाद शरत् महाराज स्वामीजी से विविध प्रश्न करने लगे।

१९०१ ई० की दुर्गापूजा के समय लाटू महाराज मठ में दीख पड़े थे। उस बार वहाँ पर प्रतिमा में दुर्गापूजा हुई थी। इसके पहले मठ में घट और पट में पूजा हुआ करती थी। इस घटना के प्रसंग में लाटू महाराज ने एक भक्त को बताया था—'जो विवेकानन्द भाई पहले देवी-देवताओं को मानता ही नहीं था, भगवान की लीला देखो कि उसी विवेकानन्द भाई ने देहत्याग करने के पहले प्रतिमा मँगवाकर मठ में पूजा की। अरे, प्रतिमा पूजा क्या बिल्कुल निरर्थक है? ऐसी बात नहीं? उसके भीतर भी तत्त्व है, उसे पकड़कर साधन-पथ में अग्रसर हुआ जा सकता है। यही समझकर तो विवेकानन्द भाई ने मठ में प्रतिमा मँगवायी। जानते हो! मठ में जिस बार दुर्गापूजा हुई, उस बार स्वामीजी श्री माताजी को मठ में ले आये थे। निकट के उद्यान में माँ रहीं, उनके आदेश से बलि देना बन्द हुआ। पूजा के समय माँ मठ में आ जातीं और पूजा समाप्त हो जाने पर वापस चली जाती थीं। शरट् के ताऊजी ने उस बार पूजा की थी। उस बार बड़ा धूम-धाम था, बहुत से लोगों को प्रसाद मिला था।'

१९०२ ई० में शिवरात्रि के दिन लाटू महाराज मठ में थे। वहाँ से लाटू महाराज के साथ ग्रन्थकार, मोक्षदा सामध्यायी और निवारण दत्त कल्याणेश्वर शिव की पूजा करने गये थे। वहाँ पर उन्होंने एक व्यक्ति को देखकर कहा था—'अरे, देखता हूँ तुझे कष्ट हो रहा है। कुछ खा ले न!'

इस पर उन भक्त ने कहा—'पूजा किये बिना नहीं खाऊँगा।'

लाटू महाराज—'ऐसी जिद रखना अच्छा है। परन्तु जिद बनाये रखते कहीं मन खिन्न (अशान्त) न हो जाय।'

भक्त—'क्यों, महाराज?'

लाटू महाराज—'अरे, ऐसी जिद अच्छी नहीं। भक्तिपूर्वक पूजा करने की जिद रखो, अन्यथा पूजा को भूलकर खाने-न-खाने की जिद को ही बड़ा न कर डालना। ऐसी जिद से कोई लाभ नहीं। क्यों कि मन यदि बुरी ओर ही रह गया, तो फिर भक्ति के साथ पूजा कैसे करोगे? मन ठण्डा रहे बिना भक्ति का उदय नहीं होता।'

इस विषय के और भी दो प्रसंग हैं। एक बार (१९०६ ई० में) जब वे नकुलेश्वर-सभा में पूजा देने गये थे तो वहाँ उन्होंने देखा कि एक सहयात्री अनाहार के फलस्वरूप मूर्छित के समान हो गये हैं, तो भी उपवास तोड़ने को राजी नहीं हैं। इस पर लाटू महाराज ने उनसे कहा—'अरे, दाँत से दाँत लगाये पड़े शरीर को कष्ट देने से ही क्या धर्मलाभ हो जाता है? धर्म ऐसी वस्तु नहीं है। धर्म आनन्द की चीज है। यदि आनन्द नहीं मिलता तो उपवास करना व्यर्थ है। यदि भूख से शरीर दुर्बल और मन अशान्त हो जाय, तो फिर पूजा कौन करेगा? अधिक खाने से मन की चंचलता बढ़ती है, इसीलिए ऋषियों ने कम खाने को कहा है ताकि मन शान्त होकर इष्ट में लग सके। देखता हूँ कि तुम लोग उनकी बात को उल्टा समझकर शरीर-मन को कष्ट देकर ही सोचते हो कि धर्म हो रहा है। जानते हो वे (श्रीरामकृष्ण) क्या कहते थे?—'कुछ खाकर पूजा करने से कोई दोष नहीं होता'

एक बार (१९०२ ई० में) स्वामीजी ने लाटू महाराज से कहा था—'अरे, देखता क्या है? मैं जो कर गया, उसका फल बाद में समझेगा—अभी तो प्रारम्भ मात्र है। अभी तो यूरोप अमेरिका के लोगों ने केवल उनका नाम लेना शुरू किया है। कुछ वर्षों के बाद उन देशों के लोग हमारे ठाकुर का भाव अपना लेंगे। अभी तो सिर्फ दो-चार लोगों को देख रहा है, तब देखेगा कि लोग दल के दल आ रहे हैं। तब समझेगा कि यह विवेकानन्द क्या कर गया।'

स्वामीजी की ये बातें सुनकर लाटू महाराज ने उनसे कहा—'भाई, तुमने नया और क्या किया है? शंकराचार्य और बुद्धदेव जो कर गये हैं, तुमने उसी की पुनर्प्रतिष्ठा मात्र की है। इससे अधिक कुछ किया है क्या?

इस पर स्वामीजी ने कहा—'ठीक कहता है लेटो! मैंने केवल उसी को दुहराया भर तो है।' ऐसा कहते हुए स्वामीजी ने उन प्राचीन आचार्यों के प्रति प्रणाम किया।

एक दिन मठ में स्वामीजी ने बाबूराम महाराज से कहा—'देख बाबूराम! तू चेले-वेले मत बनाना; नहीं तो चेलों में झगड़ा होकर काम बरबाद हो जाएगा। अब से केवल राजा ही सबको दीक्षा देगा, हम लोग अब किसी को भी दीक्षा नहीं देंगे।' जिस समय यह बात चल रही थी, उस समय लाटू महाराज वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने भी स्वामीजी की बात का अनुमोदन किया। सम्भवतः इसी कारण वे किसी को शिष्य बनाना नहीं चाहते थे।

काश्मीर भ्रमण के समय स्वामीजी ने लाटू महाराज को एक अच्छा काश्मीरी शाल दिया था। एक दिन दोपहर के समय उसी को ओढ़कर वे विडन स्ट्रीट में श्री शरत्चन्द्र चक्रवर्ती के घर गये थे। शाल को देखकर शरत् बाबू ने कहा—'वाह, यह तो बड़ा अच्छा शाल है!' यह सुनते ही लाटू महाराज ने शाल को उतारकर शरत बाबू के शरीर पर ओढ़ा दिया और बोले—'तुम्हें यह पसन्द आया है तो तुम्हीं ले लो। हम लोगों के शरीर पर यह शोभा नहीं देता। गुरुभाई के प्रेम की सौगात मानकर ही एक दिन मैंने इसका उपयोग कर लिया।' यह सुनकर शरत् बाबू बड़े लज्जित हो गये। थोड़ी देर बाद उन्होंने शाल को यह कहते हुए लौटा दिया, 'महाराज! यह मेरे गुरु की दी हुई चीज है मैं इसे कैसे ले सकता हूँ?' क्रमशः यह संवाद स्वामी जी के कानों तक जा पहुँचा। उन्होंने शरत् बाबू से कहा—'अरे! तूने लिया क्यों नहीं? वह तो मनमौजी आदमी ठहरा, उसका क्या ठिकाना? और किसी को दे डालेगा। तेरे ले लेने से चीज तो रह जाती।'

१९०२ ई० की चौथी जुलाई को स्वामीजी ने देहत्याग किया। उस रात लाटू महाराज बलराम मन्दिर में थे। पर उस दिन यह समाचार पाकर अगले दिन भोर में वे उस स्थान को त्याग कर दर्जीपाड़ा के नयन चाँद दत्त स्ट्रीट में स्थित हरमोहन बाबू के घर चले गये। स्वामीजी की अस्वस्थता के दौरान वे दो-एक बार मठ में आये थे, परन्तु स्वामीजी के महाप्रस्थान का संवाद पाकर भी वे मठ में क्यों नहीं गये, इसका कारण हमारी समझ से परे है। उनके इस प्रकार के मनमौजी आचरण पर विस्मित होकर एक भक्त ने (६ जुलाई को) उनसे पूछा—'महाराज! सभी लोग तो मठ में गये, केवल आप ही नहीं गये। इस पर लोगों में चर्चा उठ रही है।'

वे बोले 'अरे, उठने दो! बातें उठाकर कोई मुझे और क्या दुःख देगा? विवेकानन्द भाई मुझसे कितना प्रेम करता था, यह वे लोग भला कैसे समझेंगे? ऐसा प्रेम खो बैठा! उनके (ठाकुर) जाने के बाद विवेकानन्द भाई का प्रेम मिला था, अब वह भी चला गया?" ये बातें उन्होंने इतनी करुणापूर्ण वाणी में कहीं कि प्रश्नकर्ता की आँखें गीली हो गयीं।

हमें जहाँ तक ज्ञात हो सका है तदनुसार उस वर्ष पूरे शीतकाल की रातें उन्होंने हरमोहन मित्र के घर पर बितायी थीं। उन दिनों प्रायः ही हरमोहन बाबू के साथ उनकी, मठ और मिशन के उद्देश्य पर चर्चा हुआ करती थी। हरमोहन बाबू बड़े ही परोपकारी थे। कहते हैं कि दूसरों का उपकार करने के हेतु, स्वयं ऋणग्रस्त हो जाने में भी वे हिचकिचाते नहीं थे। ऐसा भी सुना गया है कि रास्ते के कुत्ते-बिल्लियों तक को अपने पीछे-पीछे आते देखकर, वे दुकान से कुछ खरीदकर उन्हें

खिलाया करते थे। उनमें धर्मप्रचार का भी प्रबल आग्रह था। वे धर्मग्रन्थों का प्रणयन कर उन्हें अल्प मूल्य में बेचा करते थे। बिक्रय की अपेक्षा उनका दान ही अधिक होता था। इस कारण अपने अंति दिनों में उन्हें बड़े आर्थिक संकट का भोग करना पड़ा था। (क्रमशः)

विवेक शिखा–स्थायी कोष के दाता

१.	एक भक्तिमती महिला	—	इलाहाबाद	५,००० रुपये
२.	एक शुभैषी	—	पुणे	२०० रुपये
३.	श्री एस० के० चक्रवर्ती	—	इलाहाबाद	२७ रुपये
४.	श्री पृथ्वीराज शर्मा	—	ठण्डी, राजस्थान	३०० रुपये
५.	श्री दीपक श्रीवास्तव	—	पटना (बिहार)	१०१ रुपये
६.	एक शुभ चिन्तक	—	इलाहाबाद	२५० रुपये
७.	भी० बी० उरकुडे	—	चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)	५० रुपये
८.	श्रीमती शान्ति देवी	—	इन्दौर (मध्य प्रदेश)	१०० रुपये
९.	श्री एस० डी० शर्मा	—	अहमदाबाद	३०१ रुपये
१०.	श्रीमती प्रभा भार्गव	—	बीकानेर (राजस्थान)	२०० रुपये
११.	श्री रामलायक सिंह	—	सम्होता (छपरा)	२५ रुपये
१२.	डा० एस पी० भार्गव	—	अजमेर	१०० रुपये
१३.	श्री राम छविला सिंह	—	मुजफ्फरपुर	२५ रुपये
१४.	श्री निखिल शिवहरे	—	दमोह (म० प्र०)	१५१ रुपये
१५.	श्रीमती उषारानी कर्ण	—	सुरसंड, (सीतामढ़ी)	१०० रुपये
१६.	श्री पी० सी० सरकार	—	नरेन्द्रपुर (प० ब०)	१०० रुपये
१७.	श्रीमती मीरा मित्रा	—	इलाहाबाद	२०१ रुपये
१८.	श्री गोपाल शं० तायवाडे	—	अमरावती (महाराष्ट्र)	१०० रुपये
१९.	श्री महादेव शि० गुंडावार	—	भद्रावती (महाराष्ट्र)	५० रुपये
२०.	श्री राजीव कुमार राजू	—	सैदपुर, पटना-४	३१ रुपये
२१.	श्री राज सिंह	—	गाजियाबाद (उ० प्र०)	५० रुपये
२२.	श्री चन्द्र मोहन	—	टुण्डला (उ० प्र०)	९८५ रुपये

निवेदन—१. स्थायी कोष के लिए दान सम्पादकीय पते पर भेजने की कृपा करें।
२. चेक या ड्राफ्ट "विवेक शिखा" के नाम से भेजें।

भजन

श्रीमती शीला मुखार्जी
कलकत्ता

प्रणवउँ रामकृष्ण भगवाना
कलि अवतरेउ हेतु कल्याणा
विनवउँ माँ शारदा भवानी
लीलामयी परम कल्याणी।
वन्दउँ स्वामीजी को सादर
ज्ञान विराग प्रेम के सागर।
पुण्य भूमि वह अमर अनूपा
विलसत भवतारिणि अपरूपा
द्वादश महादेव, नित—पूजा
राधाकान्त सरिस नहिं दूजा
पञ्चवटी शुभ सदा सुहागिनि
जहँ दक्षिणामूर्ति मंदाकिनि !
लीला-भूमि प्रेम अवतारा
साधन-धाम, सुसिद्धि अपारा
भक्ति—भाव से छोड़ के आपा
जावें जो, कटिहैं सब पापा।
मानस-हंस भये राखाला
ठाकुर मेरे अमित कृपाला
लाटू शरत् नरेन शशि की
काली केशव कवि गिरीश की
तारक महेन्द्र आदि सन्तन की
श्री ठाकुर के भक्त जनन की
करउँ वन्दना सब स्वजनन की
निरमल हो छवि जन-गण-मन की ॥

विवेक चूड़ामणि

स्वामी वेदान्तानन्द
अनुवादक— डॉ० आशीष बनर्जी

मिथ्या वस्तु न रहने पर भी प्रतिभासित होते देखा गया है; जैसे अंधेरे में रज्जु मे सर्पभ्रम होता है। रज्जु में सर्प कभी भी नहीं था और न रहेगा। परन्तु जब तक रज्जु में सर्पभ्रम होता है तथा 'वह रज्जु है, सर्प नहीं' यह ज्ञान नहीं होता तब तक भय एवं भय से उत्पन्न कष्ट होता है। इस प्रकार अज्ञानवश हम लोग स्वरूपतः शुद्ध आत्मा होते हुए भी स्वयं को बद्ध जीव मान कर दुःख पाते हैं।

'साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।' श्वे: उ०, ६/११—'आत्मा सबका साक्षी एवं चैतन्याभिव्यक्ति का कारण है, वह उपाधि रहित एवं गुणवर्जित है।'

'अशब्दम् अस्पर्शम् अरूपम् अव्ययम् तथाऽरसं नित्यं अगन्धवत् च यत्।' क० उ० १/३/१५—'वह शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंधविहीन, अक्षय एव शाश्वत है।'

आत्मा का जीवभाव अज्ञान कल्पित है, यह कहा गया। अब जीव का जन्ममृत्यु भी कल्पना मात्र है यह कहा जा रहा है—

> यावद्भ्रान्तिस्तावदेवास्य सत्ता
> मिथ्याज्ञानोज्जृम्भितस्य प्रमादात्।
> रज्ज्वां सर्पो भ्रान्तिकालीन एवं
> भ्रान्तेर्नाशे नैव सर्पोऽपि तद्वत् ॥१८७॥

जब तक भ्रान्ति रहती है तब तक आत्मस्वरूप-विचार के अभाववश मिथ्या ज्ञान से उत्पन्न जीव भाव भी विद्यमान रहता है। जिस प्रकार रज्जु में सर्पज्ञान भ्रमकाल मात्र रहता है, रज्जु में सर्प भ्रम नष्ट होने पर पुनः सर्प नहीं दिखाई देता है; उसी प्रकार अज्ञान नाश के साथ ही साथ जीवभाव भी नष्ट हो जाता है। ॥१९७॥

रज्जु में सर्पभ्रम प्रतिभासित ज्ञान है, व्यावहारिक नहीं; जब तक भ्रम, रहता है तब तक यह ज्ञान रहता है। रज्जुविषयक प्रमा—(यथार्थज्ञान—रज्जु में रज्जुबोध) उत्पन्न होने पर सर्पज्ञान नष्ट हो जाता है।

आत्मा का जीवभाव एवं जन्ममरणादि रूप संसार कल्पित ही है। परन्तु जीव की अविद्यारूप उपाधि को अनादि कहा गया है। जिसका आदि नहीं है उसका नाश भी नहीं होना चाहिए। और उपाधि का नाश न होने पर आत्मा का जीव भाव एवं संसार का कभी भी नाश नहीं होगा ऐसी आशंका होती है। अग्रिम श्लोको में इसी शंका का निवारण किया गया है—

> अनादित्वमविद्यायाः कार्यस्यापि तथेष्यते।
> उत्पन्नायां तु विद्यायामाविद्यकमनाद्यपि ॥१९८॥
> प्रबोधे स्वप्नवत् सर्वं सहमूलं विनश्यति।
> अनाद्यपीदं नो नित्यं प्रागभाव इव स्फुटम् ॥१८९॥

अविद्या एवं उसका कार्य यह संसार, दोनों ही अनादि समझे जाते हैं। परन्तु विद्या (आत्मज्ञान) उत्पन्न होने पर अविद्या का काय अन्तःकरण एवं जगत अनादि होते हुए भी उनका मूल अविद्या सहित नष्ट हो जाता है; जागरण के पश्चात स्वप्न समूह जिस प्रकार नाश को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं। अविद्या से उत्पन्न यह जगत अनादि होते हुए भी प्रागभाव की भांति नाशशील है, नित्य

नहीं; यह स्पष्ट उपलब्ध होता है। १९८-१९९

प्रागभाव (प्राक+अभाव)=किसी वस्तु की उत्पत्ति का समय जानने पर यह समझा जाता है कि वह वस्तु उस समय से प्राक् (पूर्व में) वर्तमान नहीं था। अर्थात् तब उसका अभाव था। यह अभाव अनादि है। परन्तु उस वस्तु की उत्पत्ति के साथ ही उसका प्राग-भाव भी नष्ट हो जाता है। इस प्रकार अविद्या आदि होते हुए भी ज्ञानोत्पत्ति के साथ ही साथ उसका नाश हो जाता है। तभी तो यह कहा गया कि अविद्या प्राग-भाव की भाँति अनित्य है।

अनादि अविद्या का विनाश किस प्रकार दृष्ट होता है, आगे बतलाया जा रहा है—

अनादेरपि विध्वंसः प्रागभावस्य वीक्षितः।
यद् बुद्ध्युपाधिसम्बन्धात्परिकल्पितमात्मनि ॥२००॥

जीवत्वं न ततोऽन्यत्तु स्वरूपेण विलक्षणः।
सम्बन्धस्त्वात्मनो बुद्ध्या मिथ्याज्ञान ज्ञानपुरःसरः ॥२०१॥

प्रागभाव अनादि होने पर भी उसका विनाश देखा गया है। अतः बुद्धि रूप उपाधि सहित संयोग होने पर आत्मा का जो जीवभाव कल्पित होता है वह सत्य नहीं है। परन्तु आत्मा स्वरूप में जीव से भिन्न है। बुद्धि के साथ आत्मा का सम्बंध मिथ्या-ज्ञान से उत्पन्न होता है। २००-२०१

यहाँ नैयायिकों की युक्ति खण्डित होती है। एक घट के उत्पन्न होने पर, उत्पत्ति से पूर्व उसका जो 'अनादि प्राग भाव' था वह नष्ट हो जाता है। वह नष्ट न होने पर घट के उत्पन्न होने की कल्पना नहीं की जा सकती है। इस प्रकार अविद्या को अनादि मान लेने पर भी उसके विनाश की सम्भावना स्वीकार की जाती है।

यहां नैयायिकगण एक और आपत्ति करते हैं। उपाधि के कारण आत्मा में जीवभाव कल्पित होता है, यह तो वे स्वीकार कर लेते हैं परन्तु उपाधि की सत्ता भी तो स्वीकार करना आवश्यक है। और सत्ताविशिष्ट उपाधि के बिना आत्मा में जीवत्व का आरोप सिद्ध नहीं होता।

उत्तर में वेदान्तिकगण कहते हैं—उपाधि सत्य नहीं है, चैतन्य से भिन्न होने के कारण यह मिथ्या है। अग्नि के सम्पर्क में आने पर लौहपिण्ड जलने लगता है। तब लौहपिण्ड का जैसा आकार है, अग्नि का उसी प्रकार गोल, चौकोर आदि आकर प्रतीत होता है। परन्तु अग्नि सत्य है, उसमें आरोपित विभिन्न आकार मिथ्या है। उपाधि की सत्ता नहीं है।

आपत्ति—तब तो उपहित वस्तु (जिसमें उपाधि आरोपित की जाती है) वह भी मिथ्या क्यों न हो ?

उत्तर—नहीं, ऐसा सम्भव नहीं है। उपहित उपाधि से भिन्न एवं स्वरूप में (चैतन्य स्वरूप होने के कारण) मिथ्या से विलक्षण सत्य स्वरूप होता है। 'स्वरूप' से उद्देश्य है - यह जब तक उपाधि-मान है तबतक उपाधि से धर्म युक्त होने पर भी चित्-रूप में वह नित्य सत्य है। अधिष्ठान बिना भ्रम का आरोप सम्भव नहीं। भ्रम कल्पना के अधिष्ठान रूप में आत्मा सत्य है। परन्तु उपाधि एवं उपाधि के सहित आत्मा का सम्बंध, ये दोनों ही मिथ्या है।

आपत्ति—मान लिया के उपाधि मिथ्या है, परन्तु उपाधि की निवृत्ति कैसे हो सकती है। आत्मज्ञान के द्वारा उपाधि की निवृत्ति नहीं हो सकती है। उपाधि से उत्पन्न आत्मज्ञान उपाधि का निवर्तक नहीं हो सकता। अतः अविद्यारूप उपाधि की निवर्तक कोई वस्तु उसका निरूपण करने में असमर्थ होने पर चिदात्मा जिस प्रकार सत्य है, उपाधि भी उसी प्रकार सत्य क्यों न हो ?

(क्रमशः)

रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद में श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज

इलाहाबाद, ३१ अगस्त। स्थानीय रामकृष्ण मठ में विगत २८ अगस्त को रामकृष्ण मठ एवं मिशन के परम उप अध्यक्ष तथा रामकृष्ण मठ, हैदराबाद के अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द महाराजजी का शुभागमन हुआ। उसी दिन संध्या को मठ के प्रार्थना भवन में पूजनीय स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज ने श्रीरामकृष्णदेव के भक्तों को हिन्दी में सम्बोधित करते हुए कहा कि हमें मतों के पचड़े में नहीं पड़कर धर्म के मूलतत्व को ग्रहण करना चाहिए। अपने भाषण के क्रम में उन्होंने कहा कि आज विभिन्न देशों में श्रीरामकृष्ण का प्रचार तेजी से होता जा रहा है। इसका कारण यह है कि वे सबको प्रश्न करने की छूट देते हैं और सबकी जिज्ञासा शान्त करते हैं। वेदान्त में प्रश्न करना आवश्यक है। संसार के अन्य किसी धर्म में यह बात नहीं है। सनातन धर्म में ही प्रश्न करने की बात है। जो प्रश्न मैं करता हूँ, वे सत्य हैं। सत्य पर प्रश्न करने से वह चमकता है। मत (Dogmas) पर प्रश्न करने से वह उड़ जाता है। ऋषि कहते हैं - एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति। एक ही सत् है। उसे ज्ञानी जन अनेक रूपों में व्यक्त करते है। श्रीरामकृष्ण ने उसे स्पष्ट करते हुए कहा—यतो मत ततो पथ। अतः झगड़े मत करो। तत्व एक है। मत अनेक हैं। मत है विचार (Opinion)। मत है बहुवचन। तत्व है एकवचन। मत के पीछे तत्व क्या है, इसे देखना चाहिए। तत्व है ब्रह्मतत्व। भोजन में जो अच्छा लगे वह खाओ यह मत है। भोजन में जो पोषण शक्ति है, वह तत्व है। विदेशों में आजकल मत पर विश्वास नहीं रह गया है। वहाँ लोग तत्व पर जोर देते हैं। ठाकुर ने यही शिक्षा दी है कि आपस में भेद भाव छोड़कर तत्व को पकड़ो।

पूजनीय स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज ने आगे कहा कि भारत में धर्म निरपेक्ष राष्ट्र की बात कही जाती है। पर यह संभव नहीं है। भारत मत निरपेक्ष हो सकता है, धर्म निरपेक्ष राष्ट्र नहीं। धर्म क्या है? धारणात् धर्म इत्याहुः। जिसको धारण किया जाय वह धर्म है। धर्म समाज को जोड़ने की कड़ी है। उसमें संश्लेषण शक्ति (Cementing Force) है। समाज मनुष्य का समुच्चय नहीं है। समाज है मनुष्य के देवत्व की संश्लिष्ट शक्ति। यह शक्ति धर्म से आती है। वैष्णव, ईसाई, इस्लाम आदि मत हैं। सब में तत्व एक है। इसीसे प० नेहरू ने अपनी मृत्यु से कुछ ही वर्ष पूर्व श्री प्रकाशजी को लिखा था—धर्म के बिना समाज नहीं चल सकता। हम मत को छोड़ सकते हैं धर्म को नहीं।

पूज्य स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज ने आगे कहा—धर्म नित्य है। शरीर अनित्य है। धर्म को ग्रहण कर हम अनित्य के द्वारा नित्य को प्राप्त करते हैं। श्रीरामकृष्ण ने हमें समझाया कि अज्ञान से भेद

भाव होता है। ज्ञान से एकत्व उपलब्ध होता है। अतः सब को प्रेम करो। हम एक ही प्रकृति से या तत्व से जुड़े हैं। हमारे पूर्वजों ने भी कहा कि सत् एक है। श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं—मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव। (गीता ७/७) अर्थात् मैं सूत्र हूँ। सारा जगत् मुझमें मणियों की तरह पिरोया हुआ है। श्रीरामकृष्ण इस पर और जोर देते हैं। ठाकुर के जीवन से यह स्पष्ट है। अवतार प्रत्येक युग में आते हैं—सम्भवामि युगे युगे। ठाकुर आते हैं। अपढ़ ठाकुर को आज इतने लोग श्रद्धा देते हैं। कारण यह है कि उनके भीतर ईश्वर का प्रकाश है। जैसे बुद्धदेव २५०० वर्ष पहले आये। पहले मात्र ५ शिष्यों को उपदेश दिया। फिर उनसे ही सारे एशिया में उनका धर्म फैल गया। इसी प्रकार श्रीरामकृष्ण के कुछ थोड़े से शिष्यों ने उनके भावों को ग्रहण किया और आज सारे विश्व में ठाकुर का भाव फैल गया है। श्री केशव सेन ने लिखा था—पवित्र जीवन, पवित्र भाव—यही ठाकुर की सम्पत्ति है। आज ब्राजील में उनके भक्त आते हैं। एक माह पूर्व काशीपुर उद्यान बाटी (कलकत्ता) में रूस के आधा दर्जन नागरिकों ने रामकृष्ण भाव की दीक्षा ली। इसी भाँति श्री सारदादेवी हैं – मातृ हृदय। वहाँ कोई बंधन नहीं है। जाति, धर्म, सम्प्रदाय का कोई बंधन नहीं। जो भी आया माँ की कृपा प्राप्त कर धन्य हुआ। उनके यहाँ मत का महत्व नहीं था, तत्व का था।

श्री रामकृष्ण ने प्रार्थना की थी माँ, मेरे मुँह से मत (Dogma) न आवे, केवल धर्म आवे। उन्होंने अपना आशीर्वचन लोगों को दिया—तोमार चैतन्य होक—तुम्हें चैतन्य की प्राप्ति हो। यह ठाकुर बोले। जहाँ चैतन्य हुआ वहाँ केवल आनन्द है– शोक-ताप नहीं। आनन्देर हाट—आनन्द की हाट—यही रामकृष्ण के धर्म का स्वरूप है।

स्वामी विवेकानन्द में निर्भयता, आत्मश्रद्धा, आत्म विश्वास के भाव भरे हैं। वे कहते हैं—अपने ऊपर श्रद्धा रखो। वे क्रान्तिकारी भाषा में कहते हैं—धर्म से शक्ति, निर्भयता, आनन्द और सेवा-भाव की प्राप्ति होती है। यही संदेश ठाकुर माँ, स्वामीजी ने दिया। ठाकुर ने कहा, मन्दिर में ईश्वर हैं और बाहर भी ईश्वर हैं। सबको ईश्वर मान कर चलो। यह है अभिन्न दृष्टि—मैं तुम एक। श्रीरामकृष्ण और माँ सारदा ने इस वेदान्त को समझाया। श्रीरामकृष्ण को समझकर वेदान्त समझना सरल हो जाता है। इसीसे पहले श्रीरामकृष्ण को जानो। उन्हें समझो। फिर वेदान्त आसानी से स्वयं समझ जाओगे।

पूजनीय स्वामी रंगनाथानन्दजी ने अंत में अभेद दृष्टि अपनाने पर बल देते हुए कहा कि भारत भेद दृष्टि के कारण नष्ट हो गया है। अब इसे अभेद दृष्टि, अभिन्न दृष्टि अपनाने की जरूरत है। हम आज स्वकेन्द्रित हो गये हैं। केवल अपने सुख की चिन्ता में हम कुछ भी कर बैठते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था – हमें एक वेदान्ती समाज बनाना है – एकता मूलक समाज बनाना है। अभी तक हमारा समाज स्मृति मूलक—भेद मूलक है। इसे श्रुतिमूलक—एकतामूलक बनाना होगा। श्रीरामकृष्ण संसार को रूपान्तरित करने, बदलने के लिए ही आये थे। हम उनकी वाणी को पढ़कर नये विश्व के निर्माण में योगदान करें। श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द की वाणी का कितना भी अध्ययन करें हमें तृप्ति नहीं होती, बार-बार उसे पढ़ने की इच्छा होती है, क्योंकि वहाँ स्वादो-स्वादो पदे पदे की स्थिति है। स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज ने एक घंटे तक हिन्दी में अबाध गति से धाराप्रवाह भाषण देकर श्रोताओं को चकित, विस्मित और विमुग्ध कर दिया।

रामकृष्ण मठ इलाहाबाद के अध्यक्ष स्वामी निखिलात्मानन्दजी महाराज ने आरम्भ में पूजनीय महाराज का स्वागत किया और अंत में धन्यवाद ज्ञापन करते हुए कहा कि इतनी देर तक हम कालातीत स्थिति में चले गये थे। ऐसा प्रभाव ही है पू० स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज के उद्दीपक एवं प्रभावोत्पादक व्याख्यान का।

३० अगस्त को संध्या ६ बजे से ७ बजे तक स्थानीय जगत तारण गर्ल्स डिग्री कॉलेज के विशाल सभागार में आयोजित जन सभा में पू० रंगनाथानन्द जी महाराज ने धर्म की प्रासंगिकता विषय पर बड़ा ही सारगर्भित, विचारोत्तेजक एवं दृष्टि उन्मेषक व्याख्यान अंग्रेजी में दिया। सभागार श्रोताओं से खचाखच भरा था और बाहर भी श्रोताओं की खड़ी भीड़ पूरे मनोयोग से महाराज का प्रवचन सुनती रही।

२९ अगस्त को मठ में पू० रंगनाथानन्दजी महाराज ने ११५ व्यक्तियों को दीक्षा भी दी।

□

प्रत्येक धर्म-साधक एवं अध्यात्म-जिज्ञासुओं के लिए अवश्य पठनीय पुस्तक

पथ और पाथेय

लेखक—स्वामी ब्रह्मेशानन्द

प्रकाशक—श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम,

जयप्रकाश नगर, छपरा—८४१ ३०१ (बिहार)

पृष्ठ—२०१

मूल्य—१५ रुपये मात्र (डाक खर्च १० रुपये अलग)

बैद्यनाथ च्यवनप्राश

अब पोलीथीन में उपलब्ध

आदर्श आयुर्वेदिक पारिवारिक टानिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।

बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-९

डाक पंजीयित संख्या सी. एच. पी. - १४ - ८३

स्वामी विवेकानन्दकृत सम्पूर्ण साहित्य

पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य
धर्म तथा अध्यात्म		**योग**	
धर्म विज्ञान	५.००	ज्ञानयोग	१४.००
धर्मतत्त्व	४.५०	राजयोग (पातञ्जल योगसूत्र, सूत्रार्थ और व्याख्यासहित)	६.००
धर्मरहस्य	३.००	प्रेमयोग	५.००
हिन्दूधर्म	६.००	कर्मयोग	६.००
हिन्दूधर्म के पक्ष में	६.००	भक्तियोग	४.००
शिकागो वक्तृता	१.५०	ज्ञानयोग पर प्रवचन	५.००
नारदभक्तिसूत्र एवं भक्तिविषयक प्रवचन और आख्यान	३.००	सरल राजयोग	५.००
भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता	४.५०	**जीवनी**	
भगवान बुद्ध तथा उनका सन्देश	२.००	महापुरुषों की जीवनगाथाएँ	६.००
देववाणी (उच्च आध्यात्मिक उपदेश)	८.००	मेरे गुरुदेव	२.५०
कवितावली (आध्यात्मिक अनुभूतिमय काव्य)	४.००	ईशदूत ईसा	१.००
वेदान्त	४.२५	पवहारी बाबा	२.००
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त	३.५०	**सम्भाषणात्मक**	
आत्मतत्त्व	३.५०	विवेकानन्दजी के संग में	१३.००
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग	५.००	स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप	५.००
मरणोत्तर जीवन	१.५०	विवेकानन्दजी के संस्मरण	५.००
		विवेकानन्दजी के सान्निध्य में	३.००

प्रकाशक : रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर-४४००१२

श्रीमती गंगा देवी जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना - ४ में मुद्रित।